शिवस्वरोदय

हिंदी टीका सहित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

श्री

शिवस्वरोदयः

(शिवपार्वतीसंवाद)

महामहोपाध्याय **पं. मिहिरचन्द्रकृत**
भषाटीका सहित

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
मुंबई ४.

भूमिका

दोहा—अष्टसिद्धिनवनिधिमिलत, मिलतमोक्षसुखखानि ।
अव्याहतगतिहू मिलत, शिवस्वरोदय जानि ।।

यद्यपि यश, कीर्ति धन, धाम, मोक्ष मिलनेके अनेक साधन है और साधक लोग निज बल, बुद्धि, ज्ञान, ध्यान, धर्म, कर्मद्वारा भवसागर पार होते हैं, पर किस गति को प्राप्त होते हैं यह अदेख भविष्यत् वाणी सदा सन्देह मेघको वर्षातीसी रहती है जिससे प्राय: समयान्तरमें अनेक धर्म कर्म पन्थ चले हैं और नित्य नवीन चलते जाते हैं । वास्तवमें सत्य और माननेके योग्य वही वस्तु है जिसमें प्रत्यक्ष गुण प्रगट हों; अतः यह जो पुस्तक "शिवस्वरोदय" उमा महेश्वर संवाद तत्त्वज्ञानकी है, इसके द्वारा अवश्य ही बहुतों ने जीवन सफल किया. तत्त्व, श्वास, नाड़ी, प्राणायाम कर सिद्ध बन साक्षात् परमेश्वरका उदाहरण कर दिखाया है. संस्कृतमें भी इस अलभ्य पदार्थका मिलना गहुत दुर्लभ था, परन्तु हमने बडे परिश्रमसे संस्कृतकी अत्यन्त शुद्ध पुस्तकसे सबके सुगमार्थ भाषांतर कराया है. यद्यपि कायिक, मानसिक, वाचिक क्रिया तो प्रत्येकके पीछे लगी है और लगना सम्भव भी है परन्तु सो भी यह केवल कायिक ही क्रियासे नरराज क्या देवराज तक बना देता है. जिनको इस आसार संसारमें बेशुमार सुख उठाना हो. वे अवश्य इंसकी उक्ति गुरुकी भक्ति निज शक्तिसे शारीरिक सुरदुर्लभ सुख भोगकर अन्तमें निजेच्छासे आनन्दपुरमें विचरे ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष—"**श्रीवेङ्कटेश्वर" प्रेस**
बम्बई ४.

श्रीगणेशाय नमः

अथ शिवस्वरोदयकी अनुक्रमणिका

इति श्री शिवस्वरोदयकी अनुक्रमणिका समाप्त

श्री

शिवस्वरोय:

हिंदी टीकासमेतः

महेश्वरं नमस्कृत्य शैलजां गणनायकम् ।
गुरुं च परमात्मानं भजे संसारतारणम् ।। १ ।।

महादेव, पार्वती, गणेश, गुरु और संसारपार करनेवाले परमात्माको जता हूँ अर्थात् प्रणाम आदिसे उनका सेवन करता हूं ।। १ ।।

देव्युवाच

देवदेव महादेव कृपां कृत्वा ममोपरि ।
सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व मम प्रभो ।। २ ।।

पार्वती कहती हैं कि देवताओंके देव ! हे प्रभो ! मेरे ऊपर कृपा करके संपूर्ण सिद्धियों के करनेवाले ज्ञानको मेरे लिये कहो ।। २ ।।

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्तते ।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयम् ।। ३ ।।

देव ! यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न होता है और किस प्रकार इसकी पालना होती है और कैसे इसका प्रलय होता है इस ब्रह्माण्डके निर्णयको मुझसे कहो ।।३।।

ईश्वर उवाच

तत्त्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्तते ।
तत्त्वे विलीयते देवि तत्त्वाद्ब्रह्माण्डनिर्णयः ।। ४ ।।

महादेव बोले–हे देवि ! यह ब्रह्माण्ड तत्त्वोंसे उत्पन्न होता है और तत्त्वो से ही इसकी पालना होती है और तत्त्वोंमें ही लीन होजाता है। इससे तत्त्वोंसे ही इसका निर्णय समझो ।। ४ ।।

देव्युवाच

तत्त्वमेव परं मूलं निश्चितं तत्त्ववादिभिः
तत्त्वस्वरूपं किं देव तत्त्वमेव प्रकाशय ।। ५ ।।

पार्वती बोलीं–कि, तत्त्ववादियोंने ब्रह्माण्डका मूल तत्त्वको ही निश्चित किया है इससे हे देव तत्त्वका स्वरूप क्या है ? सो मेरे प्रति आपही प्रगट करें ।।५ ।।

ईश्वर उवाच

निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसंभवः ।। ६ ।।

महादेव बोले–कि मायारहित, निराकार एक देव परमेश्वर है उससे आकाश पैदा हुआ और आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ ।। ६ ।।

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्भवः
एतानि पञ्चतत्वानि विस्तीर्णानि च पंचधा ।। ७ ।।

वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। ये पांच तत्त्व, एक एकके प्रति पांच प्रकारसे विस्तारको प्राप्त होते हैं अर्थात् पंचीकरण करनेसे पच्चीस तत्त्व होते हैं ।। ७ ।।

तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्त्तते ।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ।। ८ ।।

इनसे ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और इन्हींसे ब्रह्माण्डकी पालना होती है और इन्हींमें लीन होकर फिर सूक्ष्मरूपसे बना रहता है ।। ८ ।।

पञ्चतत्त्वये देहे पञ्चातत्त्वानि सुन्दरि ।
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते ज्ञायन्तेतत्त्वयोगिभिः ।। ९ ।।

हे सुन्दरि ! पांच तत्त्वोंसे पैदा हुए देहमें ये पांच तत्त्व सूक्ष्मरूपसे वर्तते हैं, उनको तत्त्वोंके ज्ञाता योगी जन जानते हैं ।। ९ ।।

अथ स्वरं प्रवक्ष्यामि शरीरस्थस्वरोदयम् ।
हंसचारस्वरूपेण भवेज्ज्ञानं त्रिकालजम् ।। १० ।।

अब शरीरके विषे स्थित स्वरोंकी उत्पत्ति है जिससे ऐसे जो आकार आदि स्वर उनको कहता हूं जिनके ज्ञानसे हंसचार रूपसे भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंका ज्ञान होता है ।। १० ।।

गुह्याद्गुह्यतरं सारमुपकारप्रकाशनम् ।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानानां मस्तके मणिः ।। ११ ।।

यह स्वरोदय ज्ञान जितनी गोप्य व छिपी वस्तु है उनमें गुप्त सार उपकारोंका प्रकाशक है और सब ज्ञानोंका शिरोमणि है ।। ११ ।।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्यप्रत्ययम् ।
आश्चर्यं नास्तिके लोके आधारंत्वास्तिकेजने ।। १२ ।।

यह स्वरोदयज्ञान भलीप्रकार जानने योग्य और प्रतीतिको करता है जो जन नास्तिक हैं उनको आश्चर्य दीखता है और जो आस्तिक हैं उनका आधार है ।। १२ ।।

अथ शिष्यलक्षणम्

शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्त्यैकमानसे ।
दृढचित्ते कृतज्ञे च देयं चैव स्वरोदयम् ।। १३ ।।

शान्तस्वभाव, शुद्ध, उत्तम आचरणशील, गुरुकी भक्तिमें जिसका मन और दृढचित्त, किये उपकारोंका ज्ञाता ऐसे शिष्यको ही स्वरोदय देना ।। १३ ।।

दुष्टे च दुर्जने क्रुद्धे नास्तिके गुरुतल्पगे ।
हीनसत्त्वे दुराचारे स्वरज्ञानं न दीयते ।। १४ ।।

जो दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक गुरुस्त्रीगामी अधीर और दुराचारी हो उसको स्वरका ज्ञान न दे ।। १४ ।।

शृणु त्वं कथितं देवि देहस्थं ज्ञानमुत्तमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रणीयते ।। १५ ।।

हे देवि ! तू मेरे कहे हुए देहमें स्थित उत्तम ज्ञानको सुन, जिसके ज्ञान मात्रसे ही सर्वज्ञ हो जाता है ।। १५ ।।

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् ।
स्वरे च सर्वं त्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम् ।। १६ ।।

सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और उत्तम गांधर्व (गान विद्या) और सम्पूर्ण त्रिलोकी ये सब स्वरमें ही हैं और स्वर ही आत्मस्वरूप है ।। १६ ।।

स्वरहीनश्च दैवज्ञो नाथहीनं यथा गृहम् ।
शास्त्रहीनं यथा वक्त्रं शिरोहीनं च यद्वपुः ।। १७ ।।

स्वरके ज्ञानसे हीन ज्योतिषी और स्वामीसे हीन घर, शास्त्रसे हीन मुख और शिरसे हीन देह शोभित नहीं होते ।। १७ ।।

नादीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च ।
सुषुम्नामिश्रभेदं च यो जानाति समुक्तिगः ।। १८ ।।

जो मनुष्य नाड़ी प्राण तत्त्व और सुषुम्ना आदि मिश्रित तीन नाडियोंके भेदको जानता है वह मुक्तिको प्राप्त होता है ।। १८ ।।

साकारे वा निराकारे शुभं वायुबलात्कृतम् ।
कथयन्ति शुभं केचित्स्वरज्ञानं वरानने ।। १९ ।।

साकार (व्यावहारिक) वा निराकार (परमार्थिक) में वायु (स्वर) के बलसे शुभ होता है और हे पार्वति ! कोई यह कहते हैं कि, स्वरके ही ज्ञानसे शुभ होता है ।। १९ ।।

ब्रह्माण्डखण्डपिण्डाद्याः स्वरेणैव हि निर्मिताः ।।
सृष्टिसंहारकर्त्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वरः ।। २० ।।

ब्रह्माण्डके खंड और पिंड आदि स्वरके ही रचे हैं, सृष्टि और संहारका कर्त्ता साक्षात् महेश्वर (शिव) रूप स्वर ही है ।। २० ।।

स्वरज्ञानात्परं गुह्यं स्वरज्ञानात्परं धनम् ।
स्वरज्ञानात्परं ज्ञानं नवा दृष्टं नवा श्रुतम् ।। २१ ।।

स्वरके ज्ञानसे परे गुण, स्वरके ज्ञानके परे धन, स्वरके ज्ञानसे परे ज्ञान न देखा है और न सुना है ।। २१ ।।

शत्रुं हन्यात्स्वरबले तथा मित्रसमागमः ।
लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबले कीर्तिः स्वरबले सुखम् ।। २२ ।।

स्वरका बल हो तो शत्रुको हने और मित्रका समागम, लक्ष्मीकी प्राप्ति कीर्ति, सुख स्वरके ही बलसे होते हैं ।। २२ ।।

कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरतो राजदर्शनम् ।
स्वरेण देवतासिद्धिः स्वरेण क्षितिपो वशः ।। २३ ।।

कन्याकी प्राप्ति (विवाह) और राजाका दर्शन देवताकी सिद्धि और राजाका वशमें होना स्वरसे ही होते हैं ।। २३ ।।

स्वरेण गम्यते देशो भोज्यं स्वरबले तथा ।
लघु दीर्घं स्वरबले मलं चैव निवारयेत् ।। २४ ।।

स्वरके ही बलसे देशाटन होता है और स्वरके ही बलसे भोजन, स्वरके ही बल से लघुशंका और मलका त्याग होता है ।। २४ ।।

सर्वशास्त्रपुराणादि स्मृतिवेदांगपूर्वकम् ।
स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्तिकिंचिद्वरानने ।। २५ ।।

हे वरानने ! संपूर्ण शास्त्र और पुराणादि स्मृति और वेदांग आदि ये सब स्वरज्ञानसे परे तत्त्व नहीं है ।। २५ ।।

नामरूपादिकाः सर्वे मिथ्या सर्वेषु विभ्रमः ।
अज्ञानमोहिता मूढा यावत्तत्त्वं न विद्यते ।। २६ ।।

जबतक तत्त्वका ज्ञान नहीं होता तबतक नाम रूप आदि भ्रम मिथ्या हैं और मूढजनोंको मोह भी तबतक ही है ।। २६ ।।

इदं स्वरोदयं शास्त्रं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ।
आत्मघटप्रकाशार्थं प्रदीपकलिकोपमम् ।। २७ ।।

यह स्वरोदय शास्त्र सम्पूर्ण उत्तम शास्त्रोंमें उत्तम है और आतमरूपी घटके प्रकाशार्थ दीपककी कलिका (कली) के समान है ।। २७ ।।

यस्मै कस्मै परस्मै वा न प्रोक्तं प्रश्नहेतवे ।
तस्मादेतस्वयं ज्ञेयमात्मनोवाऽऽत्मनात्मनि ।। २८ ।।

यह स्वरोदय प्रश्न करनेसे जिस किसीको नहीं कहना किन्तु अपने लिये ही देहमें अपनी बुद्धिसे स्वयं जानना ।। २८ ।।

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवता ।
न च विष्टिर्व्यंतीपातो वैधृत्याद्यास्तथैव च ।। २९ ।।

इस स्वरोदयमें तिथि नक्षत्र वार ग्रह देवता भद्रा व्यतीपात वैधृति आदिका दोष नहीं है ॥ २९ ॥

कुयोगो नास्त्यतो देवि भविता वा कदाचन ।
प्राप्ते स्वरबले शुद्धे सर्वमेव शुभं फलम् ॥ ३० ॥

हे देवि ! इसमें कोई कुयोग नहीं है और न कभी होगा, जब स्वरका शुद्ध बल प्राप्त हो तब सम्पूर्ण फल शुभ ही होता है ॥ ३० ॥

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तरात् ।
ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेहज्ञानहेतवः ॥ ३१ ॥

देहके मध्यमें अनेक रूप और विस्तारवाली बहुतसी नाडी स्थित ह वे सब अपने देहके ज्ञानार्थ विद्वानोंको जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

नाभिस्थानगकंदोर्ध्वमंकुराइव निर्गताः ।
द्विसप्ततिसहस्राणी देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥ ३२ ॥

नाभिस्थानके कन्दसे ऊपर अंकुरके समान निकसी हैं और देहके मध्य में ७२००० बहत्तर सहस्र नाडी स्थित हैं ॥ ३२ ॥

नाडीस्था कुण्डलीशक्तिर्भुजङ्गाकारशायिनी ।
ततो दशोर्ध्वगा नाड्योदशैवाधः प्रतिष्ठिताः ॥ ३३ ॥

नाडीमें स्थित और सर्पके समान होती हुई कुंडली शक्ति है उससे ऊपर को गयी हुई दश नाडी हैं और दश ही नीचेको गई है ॥ ३३ ॥

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यौ चतुर्विंशतिसंख्यया ।
प्रधाना दश नाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः ॥ ३४ ॥

दो दो नाडी तिरछी गई हैं ये चौवीस नाडी हैं उनमें दश नाडी प्रधान हैं और दश वायुके प्रवाहको करती हैं ॥ ३४ ॥

तिर्यगूर्ध्वास्तथा नाड्यो वायुदेहसमन्विताः ।
चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वाः प्राणसमाश्रिताः ॥ ३५ ॥

तिरछी, ऊपर और नीचे स्थित वायु और देहके आश्रित सब नाडी देहमें चक्रके समान स्थित हैं और सब प्राणके अधीन हैं ॥ ३५ ॥

तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्तमाः ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयिका ॥ ३६ ॥

उन नाडियोंमें दश नाडी श्रेष्ठ हैं और उन दशोंमें ये तीन उत्तम हैं इडा, पिंगला और तीसरी सुषुम्ना ॥ ३६ ॥

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शंखिनी दशमी तथा ॥ ३७ ॥

गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशश्विनी, अलंबुषा, कुहू और दशवीं शंखिनी जाननी ॥ ३७ ॥

इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥ ३८ ॥

इडा नाडी वामभागमें, पिंगला दक्षिणभागमें और सुषुम्ना मध्यदेशमें और गांधारी वाम नेत्रमें जाननी ॥ ३८ ॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।
यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यलम्बुषा ॥ ३९ ॥

दक्षिण नेत्रमें हस्तिजिह्वा और दक्षिण कर्णमें पूषा, वामकर्णमें यशस्विनी और मुखमें अलम्बुषा जाननी ॥ ३९ ॥

कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शंखिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडिकाः ॥ ४० ॥

लिंगदेशमें कुहू और गुदास्थानमें शंखिनी जाननी। इस प्रकार शरीरके दश द्वारोंमें दश नाडी टिकती है ।। ४०।।

पिङ्गलेडा सुषुम्ना च प्राणमार्गे समाश्रिताः ।
एताहि दश नाड्यस्तु देहमध्ये व्यवस्थिताः ।।४१ ।।

पिंगला, इडा, सुषुम्ना ये तीनों प्राणमार्गमें आश्रित हैं ये दश नाडी देहके मध्यमें स्थित हैं ।। ४१ ।।

नामानि नाडिकानां तु वातानां तु वदाम्यहम् ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानोव्यान एव च ।। ४२ ।।

नाडियोंके आश्रय जो वायु हैं उनके जो नाम हैं उन्हें कहता हूं प्राण अपान, समान, उदान और व्यान ।। ४२।।

नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।। ४३ ।।

नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त तथा धनंजय और प्राणवायु हृदयमें और अपान वायु गुदामण्डलमें सदैव वसती है ।। ४३ ।।

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ।
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधाना दश वायवः ।। ४४ ।।

समान नाभिदेशमें, कण्ठके मध्यमें उदान और सब शरीरमें व्यापी व्यान वायु होती है ये दश वायु प्रधान हैं ।। ४४ ।।

प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ।
तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ।। ४५ ।।

पांच प्राण आदि और पांच नाग आदि हैं, उन नाग आदि पांचोंके भी मैं स्थान कहता हूं ।। ४५ ।।

उद्‌गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकलः क्षुतकृतज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।। ४६ ।।

उद्‌गार (उगलना) में नाग वायु और नेत्रोंके उन्मीलनमें कूर्म और छीकनेमें कृकल और विजृंभण (जंभाई) में देवदत्त वायु जानना ।। ४६ ।।

न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ।
एते नाडीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ।। ४७ ।

और सर्वशरीरमें व्यापी धनंजय वायु मृतशरीरको भी नहीं त्यागता जीवरूप ये दश वायु सब नाडियोंमें भ्रमते हैं ।। ४७।।

प्रकटं प्राणसंचारं लक्षयेद्देहमध्यतः ।
इडापिङ्गलासुषुम्नाभिर्नाडीभिस्तिसृभिबुधः ।। ४८ ।।

देहके मध्यमें जो प्रकट प्राणका संचार है उसको इडा, पिंगला सुषुम्ना इन तीन नाड़ियोंसे ही बुद्धिमान मनुष्य जाने ।। ४८ ।।

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
इडा नाडी स्थितावामाततोव्यस्ताचपिङ्गला ।। ४९ ।।

वाम भागमें इडा, दहिनेमें पिंगला कही है, इडा नाड़ी वामरूपसे स्थित है और व्यस्त (उलटी) पिंगला स्थित है ।। ४९ ।।

इडायां तु स्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्करः ।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुर्हंसस्वरूपतः ।। ५० ।।

इडामें चन्द्रमा स्थित है और पिंगलामें सूर्य और सुषुम्ना हंस रूप से स्थित है और हंस शंभुरूपसे स्थित है ।। ५० ।।

हकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारेण प्रवेशनम्
हकारः शिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते ।। ५१ ।।

श्वासके निकसनेमें हकार कहा है और प्रवेशमें सकार, हकार शिवरूप कहा है और सकार शक्तिरूप कहा है ।। ५१ ।।

शक्तिरूपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः
दक्षनाडीप्रवाहश्च शम्भुरूपो दिवाकरः ।। ५२ ।।

और वामनाडीका प्रवाहक चन्द्रमा शक्तिरूपसे स्थित है और दक्षिण नाड़ीका प्रवाहक (चलानेवाला) शंभु सूर्य स्थित है ।। ५२ ।।

श्वासे सकारसंस्थे तु यद्दानं दीयते बुधैः ।
तद्दानं जीवलोकेऽस्मिन् कोटि कोटिगुणं भवेत् ।। ५३ ।।

जब श्वास सकारमें स्थित हो उस समय जो दान बुद्धिमान् मनुष्य दे वह दान इस जीवलोकमें कोटिगुना फल देता है ।। ५३ ।।

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गे वै चन्द्र सूर्ययो । ५४ ।।

एकाग्रचित्त और समाहित (समाधान) योगी इसी मार्गसे देखे और चन्द्रमा और सूर्यके मार्गमें ही सबको जान ले ।। ५४ ।।

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरे न कदाचन ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ।। ५५ ।।

जो मनुष्य जिस समय जीव स्थिर होय उसी समय तत्त्वका ध्यान करे, अस्थिर (चंचल) में कदाचित् न करे । उसको इष्टकी सिद्धि होती है और महान् लाभ और जय होता है ।। ५५ ।।

चन्द्रसूर्यसमभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नरः
अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत् ।। ५६ ।।

जो मनुष्य सदैव चन्द्र सूर्य स्वरोंका भली प्रकार अभ्यास करते हैं उनको भूत और भविष्यत्का ज्ञान हस्तगत (प्रत्यक्ष) होता है ॥ ५६ ॥

वामे चामृतरूपा स्याज्जगदाप्यायनं परम् ।
दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयेत्सदा ॥ ५७ ॥

वामभागकी नाड़ी (इडा) अमृतरूप और सब जगतकी पोषक होता है और दक्षिणके चर भागको पिंगला नाड़ी सदैव जगतको पैदा करती है ॥५७॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु ।
सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति सिद्धिदा ॥ ५८ ॥

और मध्यमा (सुषुम्ना) नाड़ी क्रूर और सम्सूर्ण कर्मोंमें दुष्ट होती है और वामा नाडी सम्पूर्ण शुभ कार्योंमें सिद्धि की दाता होती है ॥ ५८ ॥

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा ।
चन्द्रः समः सुविज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ॥ ५९ ॥

और गमनके समयमें वामा नाडी और प्रवेशके समय दक्षिणा शुभ होती है और चन्द्रमाको सम और सूर्यको विषम सदैव जानना ॥ ५९ ॥

चन्द्रः स्त्री पुरुष सूर्यश्चन्द्रो गौरोऽसितो रविः ।
चन्द्रनाडीप्रवाहेण सौम्यकार्याणि कारयेत् ॥ ६० ॥

चन्द्रमा स्त्री और सूर्य पुरुष और चंद्रमा गौरवर्ण और सूर्य कृष्ण वर्ण जानना और जब चन्द्रमाकी नाडी का प्रवाह हो उस समय सौम्य कार्योंको करे ॥ ६० ॥

सूर्यनाडीप्रवाहेण रौद्रकर्माणि कारयेत् ।
सुषुम्नायाः प्रवाहेण भुक्तिमुक्तिफलानि च ॥ ६१ ॥

और सूर्य नाडीके प्रवाहमें रौद्र (क्रूर) कर्मोंको करावे और सुषुम्नाके प्रवाहमे भोग और मुक्ति फलके देनेवाले कार्योंको करे ॥ ६१ ॥

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करो हि सितेतरे ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि कृतोदया ।। ६२ ।।

शुक्लपक्षमें प्रथम चन्द्रमाका स्वर और कृष्णपक्षमें प्रथम सूर्यका चलता है और प्रतिपदासे लेकर तीन २ दिन चन्द्रमा और सूर्यका स्वर बलवान् होता है ।। ६२ ।।

सार्धद्विघटिके ज्ञेयः शुक्ले कृष्णे शशी रविः ।
वहत्येकदिनेनैव यथा षष्टिघटीः क्रमात् ।। ६३ ।।

और ढाई ढाई २।। घटी शुक्लपक्षमें चन्द्रमा, ढाई ढ़ाई २ ।। घटी कृष्ण पक्षमें सूर्य एक दिनमें साठ घटी पर्यंत बहते हैं, अर्थात् दोनों स्वरोंकी क्रमसें २४ चौबीस २ आवृत्ति होती है ।। ६३ ।।

वहेयुस्तद्घटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत् ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीते विवर्जयेत् ।। ६४ ।।

और उन प्रत्येक ढाई २।। घटियों में पांचों तत्त्व कहते है और प्रतिप्रदासे लेकर जो चन्द्रमा और सूर्यके दिन कहे हैं उनसे विपरीत हो अर्थात् चंद्रमाके स्वर में सूर्यका और सूर्यके समयमें चन्द्रमा का स्वर चले तो उसको वर्ज दे, क्योंकि वह अशुभ है ।। ६४ ।।

शुक्लपक्षे भवेद्वामा कृष्णपक्षे च दक्षिणा ।
जानीयात्प्रतिपत्पूर्वं योगी. तद्गतमानसः ।। ६५ ।।

शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे लेकर प्रथम वामा और कृष्ण पक्षमें प्रथम दक्षिणा नाडीको योगी एकाग्र अन्तकरणसे जाने ।। ६५ ।।

शषांकं वारयेद्रात्रौ दिवा वारय भास्करम् ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ।। ६६ ।।

रात्रिके समय चन्द्र स्वरको और दिनके समय सूर्य स्वरको निवारण करे इस प्रकार अभ्यासमें जो तत्पर है वही योगी है, इसमें संशय नहीं ।।६६।।

सूर्येण बध्यते सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रेण बध्यते ।
यो जानाति क्रियामेतां त्रैलोक्यं वशगं क्षणात् ।। ६७ ।।

सूर्यके स्वरसे सूर्य और चंद्रमाके स्वरसे चंद्रमा बंद होता है और जो मनुष्य इस क्रियाको जानता है उसके वशमें त्रिलोक क्षणमात्रमें होता है ।। ६७ ।।

उदयं चन्द्रमार्गेण सूर्येणास्तमनं यदि ।
तदा ते गुणसंघाता विपरीतं विवर्जयेत् ।। ६८ ।।

यदि चन्द्रमाके स्वरमें सूर्यका उदय हो और सूर्यके स्वरमें अस्त हो तो उस समय अनेक गुणोंके समूह पैदा होते हैं और इससे विपरीत (उलटा) हो तो उसको वर्ज दे ।। ६८ ।।

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाडिका ।
सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः ।। ६९ ।।

बृहस्पति, शुक्र, बुध और सोम इन वारोंमें वामनाडी सब कार्यों में सिद्धिकी दाता होती है और शुक्लपक्षमें यह हो तो और भी विशेष फल होता है ।। ६९ ।।

अर्काङ्गारकसौरीणां वासरे दक्षनाडिका ।
स्मर्त्तव्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ।। ७० ।।

आदित्य, मंगल, शनैश्चर इन वारोंमें दक्षिणनाडीका स्मरण चर कार्योंमें करना और इसका फल कृष्णपक्षमें विशेषकर होता है ।। ७० ।।

प्रथमं वहते वायुर्द्वितीयं च तथानलः ।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणो वहेत ।। ७१ ।।

प्रथम वायुतत्त्व बहता है, द्वितीय बार अग्नितत्व, तृतीयबार भूमितत्व और चतुर्थ बार वरुणतत्व बहता है और पांचवा आकाशतत्व ।। ७१ ।।

सार्द्धद्विघटिके पञ्च क्रमेणैवोदयन्ति च ।
क्रमादेकैकनाड्यां च तत्त्वानां पृथगुद्भवः ।। ७२ ।।

ढाई घटीके मध्यमें जो पूर्वोक्त पाचों तत्व क्रमसे उदय होते हैं और एक २ नाड़ीमें भी क्रमसे पृथक पांचों तत्व उदय होते हैं ।। ७२ ।।

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादशसंक्रमाः ।
वृषकर्कटकन्यालिमृगमीना निशाकरे ।। ७३ ।।

रात्रि और दिनके मध्यमें चन्द्र और सूर्यकी बारह संक्रांति जाननी, दिनमें वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन संक्राति चन्द्रमाकी होती है ।। ७३ ।।

मेषसिंहौ च कुम्भश्च तुला च मिथुनं धनम् ।
उदये दक्षिणे ज्ञेयःशुभाशुभविनिर्णयः ।। ७४ ।।

मेष, सिंह, कुम्भ, तुला, मिथुन, धन ये संक्रांति सूर्य की जाननी इस प्रकार उदय और दक्षिणके शुभ अशुभका निर्णय जानना ।। ७४ ।।

तिष्ठेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे ।
दक्षनाड्याः प्रसारेतु न गच्छेद्याम्यपश्चिमे ।। ७५ ।।

पूर्व और उत्तरमें चन्द्रमा टिकता है पश्चिम और दक्षिणमें सूर्य दक्षिण नाड़ीके प्रवाह (स्वर) में दक्षिण और पश्चिममें न जाय ।। ७५ ।

वामाचारप्रवाहे तु न गच्छेत्पूर्व उत्तरे ।
परिपन्थिभयं तस्य गतोऽसौ न निवर्त्तते ।। ७६ ।।

और वाम नाडीके प्रचारमें पूर्व और उत्तरमें न जाय, जाय तो उसको शत्रुका भय होता है और जो गया वह फिर नहीं लौटता ।। ७६ ।।

तत्र तस्मान्न गन्तव्यं बुधैः सर्वहितैषिभिः ।
तदा तत्र तु संयाते मृत्युरेव न संशयः ।। ७७ ।।

इससे सबके हितैषी बुद्धिमान उस समय न जायँ, यदि उस समयमें जायँ तो मृत्यु होनेमें संदेह नहीं होता ।। ७७ ।।

शुक्लपक्षे द्वितीयायामर्के वहति चन्द्रमाः ।
दृश्यतेलाभदः पुंसां सौम्ये सौख्यं प्रजायते ।। ७८ ।।

यदि शुक्लपक्षकी द्वितीयाकेदिनसूर्यके प्रवाह में चन्द्रमा हो तो पुरुषो को लाभदायक होता है और उस समय सौम्य कार्य किया जाय तो सुख होता है ।। ७८ ।।

सूर्योदये यदा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रोदये भवेत् ।
सिध्यन्ति सर्वकार्याणि दिवारात्रिगतान्यपि ।। ७९ ।।

जिस समय सूर्यके उदयमें सूर्य और चन्द्रमाके उदयमें चन्द्रमाका ही स्वर हो तो उस समय दिन वा रात्रिमें किये हुए सब काम सिद्ध होते हैं ।।७९ ।।

चन्द्रकाले यदा सूर्य सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत् ।
उद्वेगःकलहो हानिः शुभं सर्व निवारयेत् ।। ८० ।।

जिस समय चन्द्रमाके समयमें सूर्य और सूर्य समयमें चन्द्रमा हो तब उद्वेग, कलह, हानि होते हैं और संपूर्ण शुभकी निवृत्ति होती है ।। ८० ।।

सूर्यस्य वाहे प्रवदन्ति विद्या ज्ञानं ह्यगम्यस्य
तु निश्चयेन । श्वासेन युक्तस्य तु शीतरश्मेः प्रवाहकाले
फलमन्यथा स्याद् ।। ८१ ।।

बुद्धिमान, मनुष्य सूर्यके प्रवाहमें अगम्य (जो न देखी न सुनी) वस्तुका ज्ञान निश्चयसे कहते हैं और चन्द्रमाके श्वासका प्रवाह हो तो अन्यथा फल होता है अर्थात् अगम्य वस्तुका नहीं होता ।। ८१ ।।

अथ विपरीत लक्षणम्

यदा प्रत्यूषकालेन विपरीतोदयो भवेत् ।
चन्द्रस्थाने वहत्यर्को रविस्थाने च चन्द्रमाः ।। ८२ ।।

जिस दिन प्रातःकालसे लेकर वितरीत स्वरोंका उदय हो अर्थात् चन्द्रमा के स्थानमें सूर्य और सूर्यके स्थानमें चन्द्रमा बहे उस समय यह फल जानना ।। ८२ ।।

प्रथमे मनउद्वेगं धनहानिर्द्वितीयके ।
तृतीये गमनं प्रोक्तमिष्टनाशं चतुर्थके ।। ८३ ।।

प्रथम मनका उद्वेग, दूसरे में धनकी हानि और तीसरेमें गमन और चौथेमें इष्टका नाश होता है ।। ८३ ।।

पञ्चमे राज्यविध्वंसं षष्ठे सर्वार्थनाशनम् ।
सप्तमे व्याधिदुःखानिअष्टमे मृत्युमादिशेत् ।। ८४ ।।

पांचवेमें राज्य विध्वंस और छठेमें सम्पूर्ण अर्थोंका नाश और सातवेमें व्याधि और दुःख और आठवेंमें मृत्युका होना कहा है ।। ८४ ।।

कालत्रये दिनान्यष्टौ विपरीतं यदा वहेत् ।
तदा दुष्टफलं प्रोक्तं किंचिन्न्यूनं तु शोभनम् ।। ८५ ।।

प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल इन तीनोंकालों में यदि पूर्वोक्त विपरीत स्वरोंका उदय आठ दिनतक बराबर चले तो उस समय दुष्ट फल कहा है, यदि कुछ काम विपरीत चले तो शुभ फल जानना ।। ८५ ।।

प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्रः सायंकाले दिवाकरः ।
तदा नित्यं जयो लाभो विपरीतं विवर्जयेत् ।। ८६ ।।

जिस दिन प्रातःकाल और मध्याह्नको चद्रमाका स्वर और सायंकालको

सूर्यका स्वर चले तो उस दिन जय और लाभ कहा है और विपरीत स्वर चले तो वर्ज दे अर्थात् अनिष्ट फल होता है ।। ८६ ।।

वामे व दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवः ।
कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा ।। ८७ ।।

यात्राके समय वाम वा दक्षिण जो स्वर चलता हो उसी चरणको प्रथम आगे रखकर यात्रा करे तो वह यात्रा सिद्धिकी दाता होती है ।। ८७ ।।

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः सदा ।
पूर्णपादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ।। ८८ ।।

चन्द्रमाका स्वर चलता हो तो सम पद २–४–६ आदि रखने और सूर्यका स्वर चलता हो तो विषम पद १–३–५ आदि आगे रखने इस प्रकार पूर्ण पाद आगे रखने से यात्रा सिद्धिकी दाता होती है ।। ८८ ।।

यत्रांगे वहते वायुस्तदंगकरसंतलात् ।
सुप्तोत्थितो मुखं स्पृष्ट्वा लभते वाञ्छितंफलम् ।। ८९ ।।

जिस अंगका स्वर चलता हो उसी अंगके हाथके तलसे शयनसे उठकर मनुष्य मुखका स्पर्श करे तो वांछित फलको प्राप्त होता है ।। ८९ ।।

परदत्ते तथा ग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपि च ।
यदंगे वहते नाडी ग्राह्यं तेन करांघ्रिणा ।। ९० ।।

दूसरेको दान देने वा ग्रहण करनेमें वा घरसे बाहर जानेमें जिस अंगकी नाडी चलती उसी हाथ वा पैरको आगे करके वस्तु को ग्रहण करे तो ।। ९० ।।

न हानिः कलहो नैव कण्टकैर्नापि भिद्यते ।
निवर्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जितः ।। ९१ ।।

न हानि हो, न कलह हो और न कंटक (शत्रु) से बिंधे और वह सर्वदा सुखी रहे और सब उपद्रवोंसे वर्जित भी रहेगा ।। ९१ ।।

गुरुबन्धुनृपामात्येष्वन्येषु शुभदायिनो ।
पूर्णांगेखलु कर्त्तव्याकार्यसिद्धिर्मनः स्थिता ।। ९२ ।।

गुरु, बंधु, राजा मंत्री आदिसे शुभ देनेवाली कार्यकी सिद्धि करनी हो तो पूर्ण हाथसे अर्थात् हाथमें कोई फल लेकर करनी, वह सिद्धि मनोवांछित फलको देती है ।। ९२ ।।

अग्निचोराधर्मधर्मा अन्येषां वादिनिग्रह ।
कर्त्तव्याः खलु रिक्तायां जयलाभसुखार्थिभिः।। ९३ ।।

अग्निका दाह, चोर, अधर्म–कार्य और धर्मकार्य-वादीको निग्रह (दंड) करना हो तो रिक्त खाली हाथसे ही जय लाभ सुखके अभिलाषी मनुष्य कार्य सिद्धिको करें ।। ९३ ।।

दूरदेशे विधातव्यं गमनं तु हिमद्युतौ ।
अभ्यर्णदेशे दीते तु कारणाविति केचन ।। ९४ ।।

कोई ऐसा कहते हैं कि दूर देशमें जाना हो तो चन्द्रमाके स्वरमें और समीप देशमें जाय तो सूर्यके स्वरमें गमन करे ।। ९४ ।।

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टं लाभादिसमरागमः ।
तत्सर्वं पूर्णनाडीषु जायते निर्विकल्पकम् ।। ९५ ।।

जो कुछ लाभ आदि प्रथम कहा है यह सब युद्धके समय तभी निःसंदेह होता है जब नाडी पूरे पूरे स्वरसे चलती हो ।। ९५ ।।

शून्यनाड्या विपर्यस्तं यत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ।। ९६ ।।

और शून्य नाडी चलती हो वह तो पूर्वोक्त फलशिव जीके कथनानुसार अन्यथा (उलटा) होता है ।। ९६ ।।

व्यवहारे खलोच्चाटे द्वेषिविद्यादिवञ्चके ।
कुपितस्वामिचोराद्ये पूर्णस्थाःस्युर्भयंकराः ।। ९७ ।।

व्यवहार दुष्ट मनुष्यका उच्चाटन वैरी विद्या आदिसे ठगना स्वामीका कोप और चौर आदि क्रूर कामोंसे पूर्ण स्वर भयके कर्ता होते हैं अर्थात् अच्छे नहीं ।। ९७ ।।

दूराध्वनि शुभश्चन्द्रो निर्विघ्नोऽभीष्टसिद्धिदः ।।
प्रवेशकार्यहेतौ च सूर्यनाडी प्रशस्यते ।। ९८ ।।

जो मनुष्य दूर मार्गमें जाना चाहे उसको चन्द्रमाका स्वर शुभ है, जो निर्विघ्न वांछितकी सिद्धि करता है और प्रवेशके कार्यमें सूर्यकी नाडी श्रेष्ठ होती है ।। ९८ ।।

अयोग्ये योग्यता नाड्या योग्यस्थानेप्ययोग्यता ।
कार्यानुबंधनो जीवो यथा रुद्रस्तथा चरेत् ।। ९९ ।।

अयोग्य कार्यमें नाडीकी योग्यता और योग्य कार्यमें अयोग्यताको कार्य का अनुबंधी जीव प्राप्त होता है इससे जैसा स्वर हो वैसा ही आचरण मनुष्य करे ।। ९९ ।।

चन्द्रवारे विषहते सूर्यो बलिवशं नयेत् ।
सुषुम्नायां भवेन्मोक्ष एको देवस्त्रिधास्थितः ।। १०० ।।

चन्द्रमाका स्वर चले तो किसीके किये अपराधको भी मनुष्य सह लेता है और सूर्यका स्वर चले तो बलवान् भी वशमें हो सकता है और सुषुम्ना नाडी का स्वर हो तो मोक्ष होता है । इस प्रकार एक देव (स्वर) तीन प्रकारसे स्थित है ।। १०० ।।

शुभान्यशुभकार्याणि क्रियन्तेऽहर्निशं यदा ।
तदाकार्यानूरोधेन कार्यं नाडीप्रचालनम् ।। १०१ ।।

जिस समय रात दिन शुभ और अशुभ किये जायँ तब कार्यके अनुसार नाडीको चलावे ॥ १०१ ॥

अथ इडा

स्थिरकर्मण्यलंकारे दूराध्वगमने तथा ।
आश्रमे धर्मप्रासादे वस्तूनां संग्रहेऽपिच ॥ १०२ ॥

स्थिर कार्य, भूषण, दूर मार्गमें गमन, आश्रम, धर्मप्रासाद (मंदिर) और घरकी वस्तुओंके संग्रह (संचय) करनेमें ॥ १०२ ॥

वापीकूपतडागादेः प्रतिष्ठा स्तंभदेवयोः ।
यात्रादाने विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे ॥ १०३ ॥

बावड़ी कूप तालाव और देवस्तंभ इनकी प्रतिष्ठा और यात्रा दानविवाह वस्त्र अलंकार भूषण इनमें ॥ १०३ ॥

शांतिके पौष्टिके चैव दिव्यौषधिरसायने ।
स्वस्वामिदर्शने मित्रे वाणिज्ये कणसंग्रहे ॥ १०४ ॥

शांति और पुष्टिके कर्म, दिव्य औषधी रसायन अपने स्वामीके दर्शन और व्यापार और कण (अन्न) के संग्रहमें ॥ १०४ ॥

गृहप्रवेशे सेवायां कृषौ च बीजवापने ।
शुभकर्मणि संधौ च निर्गमे शुभः शशी ॥ १०५ ॥

और गृहप्रवेश सेवा खेती बीजका बोना शुभ कर्म और संधि (मेल) और गमन इनमें चन्द्रमाका स्वर (इडा) शुभ होता है ॥ १०५ ॥

विद्यारभ्यादिकार्येषु बान्धवानां च दर्शने ।
जन्ममोक्षे च धर्मे च दीक्षायां मन्त्रसाधने ॥ १०६ ॥

और विद्यारम्भ आदि कार्योंमें और बांधवोंकेदर्शनमें जन्म और मोक्षमें धर्म और यज्ञ आदिकी दीक्षा में और मन्त्रकी सिद्धमें ।। १०६ ।।

कालविज्ञानसूत्रे तु चतुष्पादगृहागमे ।
कालव्याधिचिकित्सायां स्वामिसंबोधने तथा ।। १०७ ।।

कालका ज्ञान व सूत्र और चतुष्पादों (पशुओं) के घरमें आगमनमें कालकी व्याधिकी चिकत्सामें और स्वामीके संबोधन (बुलाना) में ।। १०७ ।।

गजाश्वारोहणे धन्विगजाश्वानां च बंधने ।
परोपकरणे चैव निधीनां स्थापने तथा ।। १०८ ।।

हाथी व घोड़ेकी सवारी धनुषका धारण हाथी व घोड़ेका बांधना परका उपकार करना और निधि (खजाना) का स्थापन करना ।। १०८ ।।

गीतवाद्यादिनृत्यादौ नृत्यशास्त्रविचारणे ।
पुरग्रामनिवेशे च तिलकक्षेत्रधारणे ।। १०९ ।।

गीत वादित्र (बाजा) नृत्य और नृत्यशास्त्रका विचार पुर और ग्रामका प्रवेश और तिलक और खेतका धारण इनमें भी चन्द्र नाडी (इडा) शुभ होती है ।। १०९ ।।

आर्तिशोकविषादेषु ज्वरितेमूर्च्छितेऽपि वा ।
स्वजनस्वामिसम्बन्धे अन्नादेर्दारुसंग्रहे ।। ११० ।।

रोग शोक विषाद (उदासी) ज्वरपीड़ा मूर्छा अपने जन और स्वामीके सम्बन्धमें और अन्न और काठके संग्रहमें भी चन्द्रनाडी श्रेष्ठ है ।। ११० ।।

स्त्रीणां दन्तादिभूषायां वृष्टेरागमने तथा ।
गुरुपूजाविषादीनां चालने च वरानने ।। १११ ।।

स्त्रियोंको दन्त आदिक भूषण, वृष्टिका आगमन, गुरुकी पूजा और

विष आदिका चालन (बाहर निकालने) में हे पार्वती ! चन्द्रनाडी श्रेष्ठ है ।। १११ ।।

इडायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च ।
तत्रापि वर्जयेद्वायुं तेज आकाशमेव च ।। ११२ ।।

इडा नाडीमें योगाभ्यास आदि कर्म सिद्धिका दाता कहा है तथापि इडानाडीमें जब वायु और आकाश तत्त्व बहते हों तब इडाको भी वर्ज दे ।। ११२ ।।

सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति दिवारात्रिगतान्यपि ।
सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ।। ११३ ।।

दिन और रात्रिके सब काम इडानाडीमें सिद्धि होते हैं और सम्पूर्ण शुभ कार्योंमें चन्द्रमाका चार (इडा) उत्तम होता है ।। ११३ ।।

कठिनक्रूर विद्यानां पठने पाठने तथा ।
स्त्रीसंगवेश्यागमने महानौकाधिरोहणे ।। ११४ ।।

कठिन और क्रूर (मारण) आदि विद्याओंके पढ़ने या पढ़ाने में, स्त्रीका संग और वेश्याके गमनमें और महानौका (जहाज) के चढ़नेमें ।। ११४ ।।

भ्रष्टकार्ये सुरापाने वीरमंत्राद्युपासने ।
विह्वलोद्ध्वंसदेशादौ विषदानेचवैरिणाम् ।। ११५ ।।

भ्रष्टकार्य, मदिराका पान, वीरमन्त्र आदिकी उपासना, विह्वल होना देशका विध्वंस और वैरियोंको विष देना इनमें और ।। ११५ ।।

शास्त्राभ्यासे च गमने मृगयापशुविक्रये ।
इष्टिकाकाष्ठपाषाणरत्नघर्षणदारणे ।। ११६ ।।

शास्त्रका अभ्यास, गमन, मृगया, पशुओंका बेचना, ईंट, काठ, पत्थर रत्न इनका घिसना और तोड़ना इसमें सूर्यनाडी (पिंगला) श्रेष्ठ है ।। ११६ ।।

गत्यभ्यासे यंत्रतंत्रे दुर्गपर्वतरोहणे।
द्यूते चौर्ये गजाश्वादिरथसाधनवाहने ।। ११७ ।।

गमनका अभ्यास यन्त्र तन्त्र किला और पर्वत पर चढना द्यूत (जुआ और चोरी करना, हाथी घोडा रथ इनको साधना व चलाना इनमें ।।११७।।

व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादिकसाधने।
यक्षिणीयक्षवेतालविषभूतादि निग्रहे ।। ११८ ।।

व्यायाम (कसरत) मारण उच्चाटन षट्कर्मोंको सिद्ध करना और यक्षिणी यक्ष वेताल विष भूत आदि का निग्रह (रोकना) इनमें ।। ११८ ।।

खरोष्ट्रमहिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा ।
नदीजलौघतरणे भेषजे लिपिलेखने ।। ११९ ।।

गधा ऊंट भैंसा हाथी घोड़ा इनपर चढना और नदीके जलवेगसे पार उतरना, औषधि करना और लीपना व लिखन इनमें ।। ११९ ।।

मारणे मोहने स्तंभे विद्वेषोच्चाटने वशे।
प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ।। १२० ।।

मारना मोहन स्तम्भन (रोक) करना विद्वेष (वैर) करना उच्चाटन और वशमें करना प्रेरणा और खेती करना क्षोभ दान और लेन देनमें ।। १२० ।

प्रेताकर्षणविद्वेषशत्रुनिग्रहणेऽपि च ।
खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने।
भोज्ये स्नाने व्यवहारे दीप्तकार्ये रविशुभः ।। १२१ ।।

प्रेतका आकर्षण (बुलाना), विरोध, शत्रुका निग्रह, दण्ड, खड्ग (तलवार) को हाथमें लेना, वैरीके संग वृद्ध, भोग व राजाके दर्शन, भोजन व स्नान और व्यवहार, दीप्त (प्रकाशित कार्य) इनमें सूर्यनाडी (पिंगला) शुभ कही है ।। १२१ ।।

भुक्तमार्गेण मन्दाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि ।
शयनंसूर्यवाहेन कर्तव्यं सर्वदा बुधैः ।। १२२ ।।

भोजनके द्वारा मन्दाग्नि करनेमें और स्त्रियोंको वशमें करना, सोना ये सब काम पंडित जन सूर्य स्वरके चलते समय करें ।। १२२ ।।

क्रूराणि सर्वकर्माणि चराणि विविधानि च ।
तानिसिद्धचन्ति सूर्येणनात्रकार्याविचारणा ।। १२३ ।।

सम्पूर्ण क्रूर कर्म और अनेक प्रकारके चरकर्म ये सब सूर्यकी नाडी (पिंगला) में सिद्ध होते हैं, इसमें कोई विचार नहीं करना ।। १२३ ।।

अथ सुषुम्ना

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता ।। १२४ ।।

जो पवन क्षणभर वामभाग और क्षणभर दक्षिण भागमें चले उसे सुषुम्नानाडी जाननी और सुषुम्ना सब कार्योंको हरनेवाली कही है ।। १२४ ।।

तस्यां नाडयां स्थितो वह्निर्ज्वलते कालरूपकः ।
विषवत्तं विजानीयात्सर्वकार्यविनाशनम् ।। १२५ ।।

उस नाडीमें टिकी हुई अग्नि कालरूप जलती है उस अग्निको विष-वाली और सब कार्योंका नाशक जानना ।। १२५ ।।

दयाऽनुक्रममुल्लङ्घ्य यस्य नाडीद्वयं वहेत् ।
तदा तस्य विजानीयादशुभं नात्र संशयः ।। १२६ ।।

जब अपने-अपने स्वाभाविक क्रमका उल्लंघन करके जिस पुरुषकी दोनों नाडी चलें तब उस पुरुषका अशुभ जानना, इसमें सन्देह नहीं है ।। १२६

क्षणं वामे क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत् ।
विपरीतं फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यं च वरानने ।। १२७ ।।

क्षणभर बाम भाग और क्षणभर दक्षिण भागमें पवन चले तो उसको विषम कहे और हे पार्वती ! उसका वितरीत फल जानना ।। १२७ ।।

उभयोरेव संचारं विषवत्तं विदुर्बुधाः ।
न कुर्यात्क्रूर सौम्यानितत्सर्वं विफलं भवेत् ।। १२८ ।।

दोनों नाडियोंके संचारको विषवत् ऐसा पंडित जन कहते हैं, उसमें क्रूर और सौम्य कर्म न करे, यदि करे तो वे सब निष्फल होते हैं ।। १२८ ।।

जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभे जयाजये ।
विषमे विपरीते च संस्मरेज्जगदीश्वरम् ।। १२९ ।।

जीना, मरना, प्रश्न, लाभ, अलाभ, जय, पराजय, विषय और विपरीत स्वरके चलनेमें जगदीश्वरका स्मरण करे ।। १२९ ।।

ईश्वरे चिंतिते कार्यं योगाभ्यासादि कर्म च ।
अन्यत्तत्र न कर्तव्यं जयलाभसुखैषिभिः ।। १३० ।।

ईश्वरका चिन्तन करके उस समय योगाभ्यास आदि कर्म ही करना और जय लाभ सुखके अभिलाषी उस समय कोई काम न करें ।। १३० ।।

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः ।
शापंदद्याद्वरं दद्यात्सर्वथैव तदन्यथा ।। १३१ ।।

जब सूर्यकी नाडी सुषुम्ना वारंवार बहे तो उस समय जो शाप अथवा वर दे वह सब अन्यथा (विपरीत) होता है ।। १३१ ।।

नाडीसंक्रमणे काले तत्त्वसंगमनेऽपि च ।
शुभं किंचिन्न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि किंचन ।। १३२ ।।

नाडीके संक्रमण (मेल) में और तत्त्वोंके संचलनमें कोई शुभ कर्म न करना और पुण्य दान आदि कर्म भी न करने ।। १३२ ।।

विषमस्योदयो यत्र मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।
यात्रा हानिकरी तस्य मृत्युः क्लेशो न संशयः ।। १३३ ।।

जिस समय विषम स्वरका उदय हो तब मनसे भी किसी कार्यकी चिंता न करे, जो करे तो उस मनुष्यकी यात्रा हानिकी करनेवाली होती है और मृत्यु अथवा क्लेश होता है इसमें सन्देह नहीं है ।। १३३ ।।

पुरो वामोर्ध्वतश्चन्द्रोदक्षाधः पृष्ठतो रविः ।
पूर्णारिक्तविवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैःसदा ।। १३४ ।।

जब प्रथम वाम स्वर और पीछे चन्द्रस्वर हो और फिर दक्षिण स्वर के पीछे सूर्य स्वरका उदय हो ये दोनों क्रम पूर्ण और रिक्त (खाली) सदैव पंडित जाने ।। १३४ ।।

ऊर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथे स्थितः ।
पृष्ठे दक्षे तथाऽधस्तात्सूर्यवाहागतः शुभः ।। १३५ ।।

वाम स्वरसे पीछे वा पहिले यदि आता हुआ दूत वाम भाग में स्थित हो और दक्षिण स्वरके पीछे वा पहिले आता हुआ दूत दक्षिण भागमें स्थित हो तो शुभ होता है ।। १३५ ।।

अनादिर्विषमः संधिर्निराहारो निराकुलः ।
परे सूक्ष्मे विलीयेत सा सन्ध्या सद्भिरुच्यते ।। १३६ ।।

अनादि जो विषम सन्धि (सुषुम्ना) निराहार और निराकुल होकर परमसूक्ष्म ब्रह्ममें लीन हो जाय अर्थात् एकरस चलती हुई जिस सुषुम्ना से ब्रह्मकी प्राप्ति होजाय उस सुषुम्नाको सज्जन संध्या कहते हैं ।। १३६ ।।

न वेदं वेद इत्याहुर्वेदो वेदो न विद्यते।
परात्मा वेद्यते येन स वेदो वेद उच्यते ॥ १३७ ॥

पंडित जन वेदको वेद नहीं कहते और वेद वेद है भी नहीं किंतु परमात्मा जिससे जाना जाय उसे ही ज्ञानियोंने वेद कहा है ॥ १३७ ॥

न सन्ध्यां सन्धिरित्याहुः संध्या संधिर्निगद्यते।
विषमः संधिगः प्राणः स संधिः संधिरुच्यते ॥ १३८ ॥

सन्ध्याको पंडित जन सन्धि नहीं कहते और न संध्या सन्धि कही जा सकती है, किन्तु जब विषम सन्धिमें प्राण हो वही संधि कहाती है ॥ १३८ ॥

इति नाड़ी भेदः

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वसंसारतारक।
स्थितं त्वदीयहृदये रहस्यं वद मे प्रभो ॥ १३९ ॥

पार्वती बोली–कि हे देवोंके देव ! हे महादेव ! सब संसारके तारक ! जो रहस्य (गुप्त) आपके हृदय में स्थित है, हे प्रभो ! वह मुझसे कहो ॥ १३९ ॥

ईश्वर उवाच

स्वरज्ञानरहस्यात्तु न काचिच्चेष्टदेवता।
स्वरज्ञानरतोयोगी स योगी परमो मतः। १४० ॥

महादेव बोले–कि स्वरज्ञानके रहस्यसे परे कोई इष्ट देवता नहीं है, जो योगी स्वरके ज्ञानमें रत है वही परम योगी माना है ॥ १४० ॥

पञ्चतत्त्वाद्भवेत्सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं प्रलीयते।
पञ्चतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥ १४१ ॥

पांच तत्त्वोंसे सृष्टि होती है और तत्त्वमें ही तत्त्व लीन होता है। पांच तत्त्व ही परम तत्त्व हैं और निरंजन (ब्रह्म) तत्त्वोंसे अतीत (परे) है ॥१४१॥

तत्त्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिभिः ।
भूतानां दुष्ट चिह्नानि जानातीह स्वरोत्तमः ॥ १४२ ॥

योगीजन सिद्धिके योगसे तत्त्वोंका नाम जाने, जो मनुष्य स्वरोंको ही उत्तम समझता है वह सब प्राणियोंके दुष्ट चिह्नोंको जान सकता है ॥ १४२ ।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मकं विश्वं यो जानाति स पूजितः ॥ १४३ ।

जो मनुष्य पृथ्वी जल में तेज वायु और आकाश इन पञ्चभूतात्मक विश्व को जानता है वही पूजित होता है ॥ १४३ ॥

सर्वलोकस्थजीवानां न देहो भिन्नतत्त्वकः ।
भूलोकात्सत्यपर्यन्तं नाडीभेदः पृथक्पृथक् ॥ १४४ ।

भूलोकसे सत्यलोक पर्यंत सब लोकमें स्थित जितने जीव हैं उनका देह भिन्न भिन्न तत्त्वरूप नहीं है परन्तु नाडी का भेद पृथक् पृथक् है ॥ १४४ ॥

वामे वा दक्षिणे वाऽपि उदयाः पञ्च कीर्तिता ।
अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामिसुन्दरी ॥ १४५ ॥

वामभाग वा दक्षिण भागमें पांच २ उदय कहे हैं । हे सुन्दरी ! उन तत्त्वोंका विज्ञान आठ प्रकारका मैं कहता हूं, तू सुन ॥ १४५ ॥

प्रथमे तत्त्वसंख्यानं द्वितीये श्वाससंधयः ।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च ॥ १४६ ॥

प्रथम तत्त्वोंका संख्यान (गिनती), दूसरा भेद श्वासकी संधि, तीसरा स्वरोंका चिह्न, चौथा भेद स्वरोंका स्थान ॥ १४६ ॥

पञ्चमे तस्य वर्णाश्च षष्ठे तु प्राण एव च ।
सप्तमे स्वादसंयुक्ता अष्टमे गतिलक्षणम् ।। १४७ ।।

पांचवा भेद तत्त्वोंका रंग, छठे भेदमें प्राण, सातवेमें स्वादका संयोग आठवें भेदमें गतिके लक्षण ।। १४७ ।।

एवमष्टविधं प्राणं विषुवन्तं चराचरम् ।
स्वरात्परतरं देवि नान्यथा त्वम्बुजेक्षणे ।। १४८ ।।

इस प्रकार चराचर में व्यापक आठ प्रकारका प्राण होता है । हे देवि ! स्वरसे परे अन्यथा (इतर) ज्ञान नहीं है ।। १४८ ।।

निरीक्षितव्यं यत्नेन सदा प्रत्यूषकालतः ।
कालस्य वञ्चनार्थाय कर्मकुर्वन्ति योगिन ।। १४९ ।।

प्रातःकालसे लेकर सदैव स्वरको देखना, क्योंकि योगिजन कालक्षेपके कर्मोंको करते हैं परंतु उनको स्वर और तत्त्वकी पहिचान रहती है ।। १४९ ।।

श्रुत्योरंगुष्ठकौ मध्यांगुल्यौ नासापुटद्वये ।
वदनप्रान्तके चान्यांगुलीर्दद्याच्च नेत्रयो ।। १५० ।।

कानोंमें दोनों अंगूठे और दोनों नासिकाके पुटोंमें मध्यकी दोनों अंगुली मुखके प्रान्त भाग (दोनोंमें मेल) में और नेत्रोंमे शेष अंगुली अर्थात् नेत्रोंमें तर्जनी और अनामिका और कनिष्ठा मुखप्रांतमें लगावे ।। १५० ।।

अस्यान्तस्तु पृथिव्यादितत्त्वज्ञानं भवेत्क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्बिन्दुर्भिर्निरुपाधिकम् ।।। १५१ ।।

इसके बीच पृथिवी आदि तत्त्वोंका ज्ञान क्रमसे पीत श्वेत अरुण (लाल) और श्याम बिंदुओंसे उपाधिरहित (स्पष्ट) होता है अर्थात्

पृथिवीका पीत वर्ण, जलका श्वेत, तेजका लाल, वायुका श्याम और आकाश का चित्र वर्ण होता है ।। १५१ ।।

दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वासं विनिःक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात्तत्त्वभेदं विचक्षणः ।। १५२ ।।

दर्पणमें मुखको देखकर श्वासको छोडे और आकारोंको देखकर तत्त्वके भेदको पंडितजन जाने ।। १५२ ।।

चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलं स्मृतम् ।
बिंदुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ।। १५३ ।।

चतुरस्र (चौकोर) अर्द्धचन्द्रमाकार, त्रिकोण (तिकोना वर्तुल (गोला), बिंदुओंका आकार नेत्रोंके आगे दीखे तो आकाशतत्त्वका लक्षण जानना ।। १५३ ।।

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानलः ।
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे ।। १५४ ।।

मध्यमें पृथिवी और नीचे जल और ऊपर अग्नि और तिरछा वायुका प्र वाह होता है दो स्वरोंका संक्रम चलता हो तो आकाश तत्त्वका चलना जानना ।। १५४ ।।

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः ।
मारुतो नीलजीमूत आकाशः सर्ववर्णकः ।। १५५ ।।

जलोंका श्वेतवर्ण, पृथिवीका पीत, अग्निका रक्त और पवनका नील मेघवर्ण आकाश सब वर्णरूप होता है ।। १५५ ।।

अथ स्थानपरत्वसे तत्त्वज्ञान

स्कन्धद्वये स्थितो वह्निर्नाभिमूले प्रभञ्जनः ।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पादान्ते मस्तके नभः ।। १५६ ।।

दोनों कन्धोंपर अग्नि, नाभिके मूलमें पवन, जानुदेश (गोडे) में पृथिवी, पाद (चरण) के अन्तमें जल और मस्तकमें आकाश तत्त्व स्थित रहता है ।। १५६ ।।

अथ स्वादसे तत्त्वज्ञानप्रकार

माहेयं मधुरं स्वादे कषायं जलमेव च ।
तीक्ष्णं तेजः समीरोऽम्ल आकाशं कटुकं तथा ।। १५७ ।।

पृथिवीका स्वाद मीठा, जलका खारा, तेजका तीखा, पवनका अम्ल और आकाशका कटु (कडुआ) होता है ।। १५७ ।।

अथ गतिसे तत्त्वज्ञान

अष्टांगुलं वहेद्वायुरनिलश्चतुरंगुलम् ।
द्वादशांगुलं माहेयं वारुणं षोडशांगुलम् ।। १५८ ।।

वायुका स्वर आठ अंगुल, पवनका चार अंगुल पृथिवीका स्वर बारह अंगुल और जलका स्वर सोलह अंगुल चलता है ।। १५८ ।।

ऊर्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यगुच्चाटनं तथा ।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्नभः सर्वत्रमध्यमम् ।। १५९ ।।

ऊर्ध्व स्वर चले तो मृत्यु और नीचा स्वर चले तो शांति, तिरछा चले तो उच्चाटन, मध्यका स्वर चले तो स्तंभ (रोकना) ये काम करे और आकाश तत्त्व सब कार्योंमें मध्यम जानना ।। १५९ ।।

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तेजसि क्रूरकर्माणि मारणोच्चाटनेऽनिले ।। १६० ।।

पृथिवी में स्थिर कार्य और जलमें चर कार्य और तेजमें कूर कार्य और मारुत (पवन) में मारण और उच्चाटन करनेसे सिद्ध होते हैं ।। १६० ।।

व्योम्नि किंचिन्न कर्तव्यमभ्यसेद्योगसेवनम् ।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ।। १६१ ।।

आकाशमें कुछ काम न करे किन्तु योगके सेवनका अभ्यास करे और उसमें सब काम शून्य होते हैं इसमें विचार न करना ।। १६१ ।।

पृथ्वीजलाभ्यांसिद्धिः स्यान्मृत्युर्वह्नौ क्षयोऽनिले ।
नभसो निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्त्ववादिभिः ।। १६२ ।।

पृथ्वी और जल तत्त्वसे सिद्धि, वह्नि तत्त्वसे मृत्यु और पवनमें क्षय (नाश) और आकाश तत्त्वसे सब काम निष्फल तत्त्व वादियोंको जानने चाहिये ।। १६२ ।।

चिरलाभः क्षितेर्ज्ञेयस्तत्क्षणे तोयतत्त्वतः ।
हानिःस्याद्वह्निवाताभ्यांनभसोनिष्फलंभवेत् ।। १६३ ।।

पृथ्वी तत्त्वसे अधिक लाभ हो जल तत्त्वसे तत्क्षण लाभ हो, वायु और अग्नि तत्त्वसे हानि, तथा आकाश तत्त्वसे निष्फल जानना ।। १६३ ।।

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुर्यावद्गुरुध्वनिः ।
कवोष्णः पार्थिवो वायुः स्थिरकार्यप्रसाधकः ।। १६४ ।।

पीतवर्ण और शनैःशनैः वा मध्यम चलने वाला और हनु (ठोडी पर्यंत जिसका शब्द गुरु (भारी) हो और जो किं चित् उष्ण हो ऐसे पृथ्वी संबंधीवायु (स्वर) को स्थित कार्योंका साधक कहते हैं ।। १६४ ।।

अधोवाही गुरुध्वानः शीघ्रगः शीतलः स्थितः ।
यः षोडशांगुलोवायुः सआपः शुभकर्मकृत् ।। १६५ ।।

जो नीचेको बहे और उसकी ध्वनि गुरु हो, जो शीघ्र चले और उसकी

स्थिति शीतल हो और जो सोलह अंगुल हो ऐसे स्वर जलका होता है उसमें शुभ काम करने ॥ १६५ ॥

आवर्त्तगश्चत्युष्णश्च शोणाभश्चतुरंगुलः ।
ऊर्ध्वं वाही च यः क्रूरः कर्मकारी स तैजसः ॥ १६६ ॥

जो आवर्त (भौंरा) तक चले, अत्यंत उष्ण हो और लाल हो और चार अंगुल हो और ऊपरको चले वह स्वर तेजका है उसमें क्रूर कर्म करने ॥ १६६ ॥

उष्णः शीतः कृष्णवर्णस्तिर्यग्गाम्यष्टकांगुलः ।
वायुः पवनसंज्ञस्तु चरकर्मप्रसाधकः ॥ १६७ ॥

जो शीतोष्ण हो, कृष्णवर्णहो और तिरछा चले और आठ अंगुलका हो वह वायु (स्वर) पवनका है उसमें चर काम सिद्ध होते हैं ॥ १६७ ॥

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः ।
अम्बरंतंविजानीयाद्योगीनां योगदायकम् ॥ १६८ ॥

जो पवन (स्वर) एकरस और सब तत्त्वोंके गुणोंको बहे उस स्वरको आकाशका जाने और वही स्वर योगियोंको योगदाता होता है ॥ १६८ ॥

पीतवर्णं चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम् ।
भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशांगुलम् ॥ १६९ ॥

जिसका वर्ण पीत हो, चौकोरा हो और मधुर हो और मध्यमें बहे और जिसका बारह अंगुलका प्रवाह हो वह पृथिवीतत्त्व होता है और भोगका दाता होता है ॥ १६९ ॥

श्वेतमर्धेन्दुसंकाशं स्वादुकाषायमार्द्रकम् ।
लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशांगुलम् ॥ १७० ॥

जिसका वर्ण श्वेत हो, अर्धचन्द्राकार हो, स्वादु हो, कसेला आर्द्र

(गीला) हो और सोलह अंगुलका जिसके प्रवाहका प्रमाण हो वह जलतत्त्व होता है और लाभको देता है ।। १७० ।।

रक्तं त्रिकोणं तीक्ष्णं च ऊर्ध्वभागप्रवाहकम् ।
दीप्तं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरंगुलम् ।। १७१ ।।

जिसका रंग रक्त हो और जो तिकोना हो और तीक्ष्ण हो और जिसका प्रवाह ऊपरको हो और जो प्रकाशमान हो और जिसका प्रमाण चार अंगुलका हो वह तत्त्व तेज सम्बंधी जानना ।। १७१ ।।

नीलं च वर्तुलाकारं स्वाद्वम्लं तिर्यगाश्रितम् ।
चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहेष्टांगुलं स्मृतम् ।। १७२ ।।

जो नीला.गोल,स्वादमें खट्टा हो और तिरछा चलता है और जो चल हो और जिसका प्रवाह आठ अंगुलों का हो वह तत्त्व पवनसंबंधी जानना ।। १७२ ।।

वर्णाकारे स्वादवाहे अव्यक्त सर्वगामिनाम् ।
मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम् ।। १७३ ।

वर्ण आकार स्वाद प्रवाहमें जिसकी गति अव्यक्त हो अर्थात् जिसमें सबका हेलमेल पाया जाय उसे आकाशसम्बन्धी तत्त्व जानना और सब कार्यों में निष्फल होता है ।। १७३ ।।

पृथ्वी जले शुभे तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदयम् ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ व्योममारुतौ ।। १७४ ।।

पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्व शुभ होते हैं और तेजके तत्त्वमें मिश्र (मध्यम) फल होता है और आकाश और वायुतत्त्वमें हानि व मृत्यु आदि अशुभ फल होते हैं ।। १७४ ।।

आपूर्वपश्चिमं पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा ।
वायु श्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्ये कोणगतं नभः ।। १७५ ।।

पूर्वसे लेकर पश्चिम पर्यंत पृथ्वीतत्त्व और उत्तर दिशामें वायुतत्त्व और मध्यकी दिशामें आकाशतत्त्व जानना ।। १७५ ।।

चन्द्रे पृथ्वीजले स्यातां सूर्येऽग्निर्वा यदा भवेत् ।
तदा सिद्धिर्नसन्देहः सौम्यासौम्येषुकर्मसु ।। १७६ ।।

चन्द्रमाके स्वरमें पृथ्वी और जलतत्त्व और सूर्यके स्वरमें अग्नितत्त्व जिस समय हो उस समयमें अच्छे और बुरे कर्मोंकी सिद्धि होती है इसमें संदेह नहीं है ।। १७६ ।।

लाभः पृथ्वीकृतोह्नि स्यान्निशायां लाभकृज्जलम् ।
वह्नौ मृत्युः क्षयोवायुर्नभः स्थानन्दहेत्क्वचित् ।। १७७ ।।

दिनमें पृथिवी तत्त्वसे और रात्रिमें जलतत्त्वसे लाभ होता है और अग्नितत्त्वसे मृत्यु और वायुतत्त्वसे नाश और आकाशतत्त्वसे दाह भी कभी कभी हो जाता है ।। १७७ ।।

जीवितव्ये जये लाभे कृष्यां च धनकर्मणि ।
मन्त्रार्धे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ।। १७८ ।।

जीवन, जय, लाभ, कृषि, धनका कर्म, मन्त्रका कार्य और युद्धका कर्म, प्रश्न, गमन और आगमन इनमें पृथ्वीतत्त्व श्रेष्ठ होता है ।। १७८ ।।

आयाति वारुणे तत्त्वे शत्रुरस्ति शुभः क्षितौ ।
प्रयातिवायुतोऽन्यत्र हानिमृत्यू नभोऽनले ।। १७९ ।।

यदि जलका तत्त्व हो तो शत्रुका आगमन समझना और पृथ्वीतत्त्वमें शुभ होता है और वायुतत्त्व हो तो शत्रु अन्य स्थानमें चला जायगा और आकाश व अग्नितत्त्व हो तो शत्रुकी हानि व मृत्यु होगी ।। १७९ ।।

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याज्जवस्य जलवातयोः ।
तेजसाधातुचितास्याच्छून्यमाकाशतोवदेत् ।। १८० ।।

यदि किसीके पूछनेके समय पृथ्वीतत्त्व हो तो मूल (वृक्ष आदि) की चिंता और जल व वायु तत्त्व में जीव की चिंता और तेज के तत्त्वमें धातुचिंता समझनी और आकाश तत्त्व में शून्य कहे अर्थात् कोई भी चिंता न कहे ।। १८० ।।

पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्विपदस्तोयवायुतः ।
तेजस्येव चतुष्पादौ नभसा पादवर्जितः ।। १८१ ।।

पृथ्वीतत्त्व हो तो बहुत पादोंसे गमन होता है अर्थात् बहुतों के संग गमन करेगा और जल और वायु तत्त्व हो तो दो पादोंसे (अकेला) गमन करे और तेजतत्त्व हो तो चार पादोंसे (दो-मनुष्योंसे गमन करेगा और आकाशतत्त्व हो तो पादोंसे रहित कहे अर्थात् कहीं भी न जायगा ऐसे कहे ।। १८१ ।।

कुजो वह्नी रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तितः ।
वायुस्थानस्थितौ राहुर्दक्षरन्ध्रप्रवावह ।। १८२ ।।

अग्नितत्त्वमें मंगल, पृथ्वीतत्त्वमें सूर्य और जलतत्त्वमें शनैश्चर और वायु तत्त्वमें राहु तब जानना यदि दक्षिण स्वर चलता हो ।। १८२ ।।

जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वीगुरुर्वातः सितोऽनल ।
वामनाड्यांस्थिताः सर्वेसर्वकार्येषुनिश्चिताः ।। १८३ ।।

यदि वामस्वर बहता हो तो जल तत्त्वमें चन्द्रमा, पृथ्वीतत्त्वमें बुधपवन तत्त्वमें बृहस्पति और अग्नितत्त्वमें शुक्र जानना, ये संपूर्ण ग्रह सर्व कार्योंमें इन पूर्वोक्त तत्त्वोंमें निश्चयसे स्थित रहते हैं ।। १८३ ।।

पृथ्वी बुधो जलादिन्दुः शुक्रो वह्नी रविः कुजः ।
वायू राहुशनी व्योम गुरुरेवं प्रकीर्तितः ।। १८४ ।।

पृथ्वीतत्त्वमें बुध, जलतत्त्वमें चन्द्रमा और अग्नितत्त्वमें सूर्य, मंगल और वायुतत्त्वमें राहु और शनैश्चर, आकाशतत्त्वमें बृहस्पति कहा है ।। १८४ ।।

प्रवासप्रश्न आदित्ये यदि राहुर्गतोऽनिले ।
तदासौ चलितो ज्ञेयः स्थानान्तरमपेक्षते ।। १८५ ।।

यदि कोई मनुष्य परदेशमें गये हुएका प्रश्न करे और उस समय सूर्यके स्वरमें राहु स्थित हो तो यह कहे कि वह परदेशी अन्यत्र जानेके लिये उस स्थानसे चल दिया ।। १८५ ।।

आयाति वारुणे तत्त्वे तत्रैवास्ति शुभः क्षितौ ।
प्रवासी पवनेऽन्यत्र मृत्युरेवानले भवेत् ।। १८६ ।।

यदि प्रश्न करनेके समय जलतत्त्व बहता हो तो परदेशीके आगमनको कहे और पृथ्वीतत्त्व हो तो परदेशी जहां गया हो वहां ही सुखी है ऐसे कहे और वायु तत्त्व हो तो अन्य स्थान में चला गया ऐसे कहे और अग्नितत्त्व हो तो परदेशी मर गया ऐसे कहे ।। १८६ ।।

पार्थिवे मूलविज्ञानं शुभं कार्यं जले तथा ।
आग्नेयेधातुविज्ञानंव्योम्निशून्यंविनिर्दिशेत् ।। १८७ ।।

पृथ्वीतत्त्वमें मूल (वृक्ष आदि) का जानना और जलतत्त्वमें शुभकार्य, अग्नितत्त्वमें धातुओंका ज्ञान और आकाशतत्त्वमें शून्यताको कहे अर्थात् किसीके ज्ञानको न कहे ।। १८७ ।।

तुष्टिः पुष्टि रतिः क्रीडा जयहर्षो धराजले ।
तेजोवाय्वोश्च सुप्ताक्षोज्वरकम्पः प्रवासिनः ।। १८८ ।।

यदि परदेशी के प्रश्नके समयमें पृथ्वी व जलतत्त्व हो तो संतोष पुष्टता, प्रीति, रति, क्रीडा, जय और हर्ष (आनन्द) और यदि तेज व वायुतत्त्व हो तो सोना व ज्वरसे कंप परदेशी को कहा है ।। १८८ ।।

गतायुर्मृत्युराकाशो तत्त्वस्थाने प्रकीर्तिता ।
द्वादशैताः प्रयत्नेन ज्ञातव्या देशिकैः सदा ।। १८९ ।।

यदि आकाशतत्त्व हो तो अवस्थासे रहित परदेशीकी मृत्युको कहे, ये बारह प्रश्न तत्त्वोंके स्थानमें कहे हैं, इनको पंडितजन बडे यत्नसे सदैव जाने ।। १८९ ।।

पूर्वायां पश्चिमे याम्ये उत्तरस्यां यथाक्रमम् ।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानिविनिर्दिशेत् ।। १९० ।।

पूर्व, पश्चिम, और दक्षिण उत्तर इन चारों दिशाओंमें क्रमसे पृथ्वी जल तेज और वायु चारों तत्त्व बलवान् कहे ।। १९० ।।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मको देहो ज्ञातव्यश्च वरानने ।। १९१ ।।

हे पार्वती ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांचों भूतरूप ही यह देह जानना अर्थात् इन पांच भूतोंसे ही पैदा होता है ।। १९१ ।।

अस्थि मांसं त्वचा नाडी रोमं चैव तु पञ्चमम् ।
पृथ्वी पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषिम् ।। १९२ ।।

और इस देहमें अस्थि (हाड), मांस, त्वचा; नाडी और पांचवां रोम ये पांच गुण पृथ्वीके हैं यह बात वेदांतशास्त्रके ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी कहते हैं ।। १९२ ।।

शुक्रशोणितमज्जा च मूत्रं लाला च पञ्चमम् ।
आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।। १९३ ।।

ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि वीर्य, रुधिर, मज्जा, मूत्र और पांचवी लाला ये पांच गुण जलोंके कहते हैं ।। १९३ ।।

क्षुधा तृषा तथानिद्रा कांतिरालस्यमेव च ।
तेजः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।। १९४ ।।

ब्रह्मज्ञानियोंका कथन है कि क्षुधा, तृषा, निद्रा कांति और आलस्य ये पांच गुण तेजके कहे हैं ।। १९४ ।।

धावनं चलनं ग्रन्थः संकोचनप्रसारणे ।
वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।१९५।।

और वेदांती कहते हैं कि दौडना, चलना, गांठ देना सकोडना व पसारना ये पांच गुण वायुके कहे हैं ।। १९५ ।।

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः ।
नभः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।। १९६ ।।

और वेदान्तशास्त्रके जाननेवालोंका कथन है कि प्रीति, वैर लज्जा, भय और मोह ये पांच गुण आकाशके इस देहमें होते हैं ।। १९६ ।।

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशच्चत्त्वारिंशत्तथाम्भसः ।
अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ।। १९७ ।।

इस देहमें पृथ्वी ५० पचास पल, जल ४० चालीस पल, अग्नि ३७ सैंतीस पल, वायु २० बीस पल और आकाश १० दस पल होते हैं अर्थात् पृथ्वी आदि तत्त्वोंमें अगला २ तत्त्व क्रमसे दश पल कम होता है ।। १९७ ।।

पृथिव्यां चिरकालेन लाभश्चापः क्षणाद्भवेत् ।
जायते पवने स्वल्पः सिद्धोऽप्यग्नौ विनश्यति ।। १९८ ।।

पृथ्वीतत्त्व हो तो चिरकाल (बहुत दिनों) में लाभ और जलतत्त्व हो तो उसी क्षणमें और पवनतत्त्व हो तो थोडा लाभ होता है और अग्नितत्त्व हो तो सिद्ध हुआ भी कार्य नष्ट हो जाता है ।। १९८ ।।

पथ्व्या पञ्च ह्यापां वेदा गुणास्तेजो द्विवायुतः ।
नभस्येक गुणश्चैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत् ।। १९९ ।।

पृथ्वीके पांच गुण, जलोंके चार गुण, तेजके तीन गुण, वायुके दो गुण और आकाशका एक गुण जानना यही तत्त्वोंका ज्ञान होता है ॥ १९९ ॥

फूत्कारकृत्प्रस्फुटिता विदीर्णा पतिता धरा ।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ॥ २०० ॥

फूकारत्करनेवाली, फूटी हुई और फूटी हुई और वृथा पड़ी हुई वह पृथ्वी सब कार्योंमें अपनी अवस्थाके समान फल, देती है ॥ २०० ॥

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठाऽनुराधा श्रवणं तथा ।
अभिजिदुत्तराषाढापृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ॥ २०१ ॥

धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाडा ये सात नक्षत्र पृथ्वीतत्त्व कहे हैं ॥ २०१ ॥

पूर्वाषाढा तथाऽऽश्लेषा मूलमार्द्रा च रेवती ।
उत्तराभाद्रपदा तोयतत्त्वं शत्भिषक् प्रिये ॥ २०२

पूर्वाषाढा, आश्लेषा, मूल, आद्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा ये सात नक्षत्र जलतत्त्व कहे हैं ॥ २०२ ॥

भरणी कृतिका पुष्यो मघा पूर्वा च फाल्गुनी ।
पूर्वाभाद्रपदा स्वाती तेजस्वत्त्वमिति प्रिये ॥ २०३ ॥

भरणी, कृतिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और स्वाती ये सात नक्षत्र तेजतत्त्व हैं ॥ २०३ ॥

विशाखोत्तरफाल्गुन्यौ हस्तचित्रे पुनर्वसुः ।
अश्विनीमृगशीर्षे च वायुतत्त्वमुदाहृतम् ॥ २०४ ॥

विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिर ये सात नक्षत्र वायुतत्त्व कहे हैं ॥ २०४ ॥

वहन्नाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं सिद्धिमाप्नोति शून्ये शून्यं न संशयः ।। २०५ ।।

बहती हुई नाडीकी तरफ बैठा हुआ जो दूत शुभ वा अशुभ पूछे वह सब सिद्ध होता है और शून्य में पूछे तो शून्य होता है इसमें संदेह नहीं है ।। २०५ ।।

पूर्णोऽपि निर्गमश्वासे सुतत्त्वेऽपि न सिद्धिदः
सूर्यश्चन्द्रोऽथवा नृणां संग्रहे सर्वसिद्धिदः ।। २०६ ।।

पूर्ण भी सूर्यतत्त्व अथवा चन्द्रतत्त्व श्वासमें बहता हो तो सिद्धिका दात' नहीं होता यदि दोनों तत्त्वोंका संग्रह (मेल) हो तो संपूर्ण सिद्धियोंको देता है ।। २०६ ।।

तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः सुत्त्वे च धनंजयः ।
कौरवा निहताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्ययात् ।। २०७ ।।

श्रेष्ठतत्त्वमें ही रामचन्द्रकी जय हुई और श्रेष्ठ तत्त्वमें ही अर्जुनकी और तत्त्वोंके विपरीत होनेसे संपूर्ण कौरव युद्धमें मारे गये ।। २०७ ।।

जन्मान्तरीयसंस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः ।
केषांचिज्जायते तत्त्ववासना विमलात्मनाम् ।। २०८ ।।

जन्मान्तरके संस्कारसे अथवा गुरुके प्रसादसे किन्हीं निर्मल आत्माओं को तत्त्वोंकी वासना (ज्ञान) होती है ।। २०८ ।।

लंबीजे धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रां सुपीतभाम् ।
सुगन्धां स्वर्णवर्णाभां प्राप्नुयाद्देहलाघवम् ।।२०९ ।।

(लं) यह बीज पृथ्वी तत्त्वोंमें चतुरस्र (चौकोर) सुवर्णके समान प्रकाशमान पीतवर्ण, सुगन्ध ध्यान करना और ध्यानका करनेवाला कांति व देहके लाघवको प्राप्त होता है ।। २०९ ।।

वंबीजं वारुणं ध्यायेत्तत्वमर्द्धशशि प्रभम् ।
क्षुत्तृष्णादिसहिष्णुत्वंजलमध्ये च मज्जनम् ।। २१० ।।

(वं) यह बीज जलतत्त्वमें ध्यान करने योग्य है और अर्द्धचन्द्रके समान इसका आकार है, इसके ध्यान करनेवालेको क्षुधा और तृषाकी बाधा नहीं होती और जलमें डूबनेकी सामर्थ्य होती है अर्थात् डूबनेसे दुःख नहीं होता है ।।२१०।।

रंबीजमग्निजं ध्यायेंत्रिकोणमरुणप्रभम् ।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ।। २११ ।।

(रं) यह बीज अग्नितत्त्वमें तिकोना रक्त वर्णन ध्यान करने योग्य है, इसके ध्यान करनेवालेको बहुत अन्नपान भक्षण करनेकी सामर्थ्य होती है और घूप और अग्निके वेगको सह सकता है ।। २११ ।।

यंबीजं पावनं ध्यायेद्वर्तुलं श्यामलप्रभम् ।
आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद्गमनं तथा ।। २१२ ।।

(यं) यह बीज पवनतत्त्वमें ध्यान करने योय और वर्तुल (गोल) और श्यामरंग होता है । इसका ध्यान करनेवाला आकाशमें गमन और पक्षियों के समान गमन कर सकता है ।। २१२ ।।

हंवीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहुप्रभम् ।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ।। २१३ ।।

(हं) यह बीज आकाशतत्त्वमें ध्यान करने योग्यं है, जो निराकार और अधिक कांतिवाला है, इसके ध्यान करनेवालेको त्रिकाल (भूत भविष्यत् वर्तमान) का ज्ञान और अणिमा आदि सिद्धि होती हैं ।। २१३ ।।

स्वरज्ञानी नरो यत्रधनं नास्ति ततः परम् ।
गम्यते स्वरज्ञानेन ह्यनायासं फलं भवेत् ।। २१४ ।।

जिस स्थानमें स्वरका ज्ञानी हो उससे परे और कोई धन नहीं

है, जो मनुष्य स्वरके ज्ञानसे गमन करता है उसको अनायास (विना परिश्रम) से फल मिलता है ।। २१४ ।।

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव महाज्ञानं स्वरोदयम् ।
त्रिकालविषयंचैव कथं भवति शंकर ।। २१५ ।।

पार्वती बोली–कि, हे देवताओंके देव महादेव ! हे शंकर ! यह महान् (बडा) स्वरोदयका त्रिकाल (भूत भविष्यत् वर्तमान) विषयक ज्ञान किस प्रकार होता है ।। २१५ ।।

ईश्वर उवाच

अर्थकालजयप्रश्न शुभाशुभमिति त्रिधा ।
एतत्त्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवति सुंदरि ।। २१६ ।।

महादेव बोले–कि हे सुन्दरी ! अर्थ (प्रयोजन वा धन) भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंका जयप्रश्न शुभ अशुभ (पराजय आदि) का जो तीनों कालोंमें ज्ञान है उसका कारण स्वरोदय है अन्य नहीं ।। २१६ ।।

तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयौ ।
तत्त्वे सुभिक्षदुर्भिक्षे तत्त्वं त्रिपदमुच्यते ।। २१७ ।।

तत्त्वके ही अधीन शुभ अशुभ कार्य है और तत्त्वके अधीन जय और पराजय है तथा तत्त्वोंके ही अधीन सुभिक्ष और दुर्भिक्ष है इस प्रकार तत्त्वको ही त्रिपाद (तिनों कालोंके कार्योंका कर्ता) कहते हैं ।। २१७ ।।

श्रीदेव्युवाच

देव–देव महादेव सर्व–संसारसागरे ।
किं नराणां परं मित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम् ।। २१८ ।।

पार्वती बोलीं :—कि हे देवताओंके देव महादेव ! इस संपूर्ण संसार समुद्रमें मनुष्योंका परम मित्र और मनुष्योंके सब कार्योंका साधन क्या है सो कहो ।। २१८ ।।

ईश्वर उवाच

प्राण एव परं मित्रं प्राण एव परः सखा ।
प्राणतुल्यः परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने ।। २१९ ।।

महादेव बोले–कि हे सुन्दरमुखी पार्वती ! प्राण ही परम मित्र है और सखा है, प्राणके समान अन्य (और) बन्धु नहीं है ।। २१९ ।।

ीदेव्युवाच

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहः किं प्राणरूपकः ।
तत्त्वेषु संचरन्प्राणी ज्ञायते योगिभिःकथम् ।। २२० ।।

पार्वती बोली–कि प्राणमें वायु किस प्रकार स्थित है और क्या देह प्राणरूप है और तत्त्वोंके विषय विचरते हुए प्राणको योगिजन किस प्रकार जान जाते हैं ।। २२० ।।

श्रीशिव उवाच

कायानगरमध्यस्थो मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलः ।। २२१ ।।

शिवजी बोले–कि हे पार्वती ! इस कायारूपी नगरमें टिका हुआ प्राण-वायु रक्षपाल (चौकीदार) है और वह प्राण प्रवेशके समय दश अंगुल और निकसनेके समय बारह अंगुलका कहा है ।। २२१ ।।

गमने तु चतुर्विंशन्नेत्रवेदास्तु धावने ।
मैथुने पञ्चषष्टिश्च शयने च शतांगुलम् ।। २२२ ।।

और गमनके समय चौबीस २४ अंगुलका और धावन (दौड़ने) के समय बयालीस ४२ अंगुलका और मैथुनके समय पैंसठ ६५ अंगुलका और सोनेके समयमें सौ अंगुलका कहा है ।। २२२ ।।

प्राणस्य तु गतिर्देवि स्वभावाद्द्वादशांगुला ।
भोजने वमने चैव गतिरष्टादशांगुला ।। २२३ ।।

और हे देवि ! प्राणकी स्वाभाविक गति बारह अंगुल है और भोजन और वमनके समय प्राणकी गति अठारह १८ अंगुल हो जाती है ।। २२३ ।।

एकांगुले कृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता ।
आनन्दस्तुद्वितीये स्यात्कविशक्ति स्तृतीयके ।। २२४ ।।

यदि प्राणकी गति एक अंगुल कम योगी कर ले तो निष्कामकी प्राप्ति होती है और दो अंगुल कम कर ले तो आनन्दकी प्राप्ति और तीन अंगुल कम करनेसे कविताकी प्राप्ति होती है ।। २२४ ।।

वाचासिद्धिश्चतुर्थे च दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे ।
षष्ठे त्वाकाशगमनं चंडवेगश्च सप्तमे ।। २२५ ।।

चार अंगुल कम कर ले तो वाणीकी सिद्धि, पांच अंगुल कम कर ले तो दूरदृष्टि, छः अंगुल कम कर ले तो आकाशगमनमें शक्ति और सात अंगुल कम कर ले तो प्रचण्ड वेग हो जाता है ।। २२५ ।।

अष्टमे सिद्धियश्चैव नवमे निधयो नव ।
दशमे दशमूर्तीश्च छाया नैकादशे भवेत् ।। २२६ ।।

आठ अंगुल कम कर ले तो अणिमा आदि सिद्धियोंकी प्राप्ति, नौ अंगुल कम करनेसे नौ निधियोंकी प्राप्ति और दश अंगुल कम करनेसे दशों मूर्तियों (अनेकरूपों) की प्राप्ति और ग्यारह अंगुल कम होनेसे देहकी छायाका अभाव प्राप्त होता है ।। २२६ ।।

द्वादशे हंसचारश्च गङ्गामृतरसं पिबेत् ।
आनखाग्रं प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यं च भोजनम् ।। २२७ ।।

बारह अंगुल प्राणकी गति कम हो जाय तो हंसगति गङ्गाजलके समान अमृत रसका पान प्राप्त होता है यदि शिखासे लेकर नख पर्यंत प्राणोंको पूर्ण योगी कर ले तो भक्ष्य और भोजन किसको अर्थात् भक्ष्य भोजनकी निवृत्ति हो जाती है ।। २२७ ।।

एवं प्राणविधिः प्रोक्तः सर्वकार्यफलप्रदः ।
जायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः ।। २२८ ।।

इस प्रकार संपूर्ण कार्योंके फल देनेवाली प्राणकी विधि कही है और उसका ज्ञान गुरुके वाक्यसे होता है विद्या और कोटि भी ग्रन्थोंसे नहीं होता ।। २२८ ।।

प्रातश्चंद्रो रविः सायं यदि दैवान्न लभ्यते ।
मध्याह्नान्मध्यरात्राच्च परतस्तु प्रवर्तते ।। २२९ ।।

यदि प्रातःकाल चन्द्रस्वर और सायंकालको सूर्यस्वर दैववश न मिले तो मध्याह्न अथवा आधी रात्रिसे परे प्रवृत्त होते हैं अर्थात् मिलते हैं ।। २२९ ।।

दूरयुद्धे जयी चन्द्रः समासन्ने दिवाकरः ।
वहन्नाड्यागतः पादः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।। २३० ।।

यदि दूर देशमें युद्ध कर्तव्य हो तो चन्द्रमा का स्वर जयकारी होता है यदि बहती हुई नाड़ीके समय गमनकालमें पैर रखा जाय तो सब सिद्धियोंको देता है ।। २३० ।।

यात्रारम्भे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके
शुभकार्याणिसिद्धिध्यन्तिचंद्रवाहेषुसर्वदा ।। २३१ ।।

यात्राके आरम्भमें, विवाह, गृह वा नगरप्रवेश आदि सम्पूर्ण शुभ कर्म चन्द्रस्वरके चारमें सदैव सिद्ध होते हैं ।। २३१ ।।

अयनतिथिदिनेशैः स्वीयतत्त्वे च युक्ते
यदि वहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम् ।
स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्वरेण
प्रभवति नच विघ्नं केशवस्यापि लोके ।। २३२ ।।

अयन, तिथि. वार इनके स्वामियोंसे युक्त पुरुषोंमें अपना स्वर व तत्त्व दैवयोगसे बहे वह पुरुष शत्रुकी सेनाको स्वरके स्तंभ (रोकना) मात्रसे जीतता है और वैकुण्ठ लोकमें भी उसको विघ्न नहीं होता ।। २३२ ।।

रक्ष जीवं रक्ष जीवं जीवांगे परिधाय च ।।
जीवो जपति यो युद्धे जीवञ्जयति मेदिनीम्,।। २३३ ।।

जीव (अपने) अंगपर वस्त्रोंको पहिनकर जो जीव (जीवं रक्ष जीवं रक्ष) युद्धमें ऐसे जपता है वह पुरुष जीवता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतता है । ।। २३३ ।।

भूमौ जले च कर्तव्यं गमनं शान्तिकर्मसु
वह्नौ वायो प्रदीप्तेषु खे पुनर्नोभयेष्वपि ।। २३४ ।।

शांतिके कर्मोंमें पृथ्वी या जलतत्त्वमें गमन करे और प्रदीप (उग्र) कर्मोंमें अग्नि और वायुतत्त्वमें गमन करे और आकाशतत्त्वमें पूर्वोक्त दोनों प्रकारके कर्मोंमें गमन न करे ।। २३४ ।।

जीवेन शास्त्रं बध्नीयाज्जीवेनैव विकासयेत् ।
जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वदा ।। २३५ ।।

जीव स्वरमें शस्त्रको बांधे अर्थात् जिस तरफका स्वर चले उसी हाथसे

शस्त्रको धारण करे और जीव स्वरसे ही शस्त्रको खोले और जीव स्वरमें ही शस्त्रको फेंके वह मनुष्य युद्धमें सदैव जयको प्राप्त होता है ।। २३५ ।।

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम् ।।
समुत्तरे पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत् ।। २३६ ।।

जो मनुष्य प्राणवायुको खींचकर अश्व आदि सवारीपर चढे और पवनके घोड़ेकी रकाबमें पैर रखे वह सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करेगा ।। २३६ ।।

अपूर्णे शत्रुसामग्रीं पूर्णे वा स्वबलं तथा ।
कुरुते पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुंधराम् ।। २३७ ।

यदि अपूर्ण स्वरमें शत्रुकी सामग्री और संपूर्ण स्वरमें अपनी सामग्रीका बल हो तो पूर्ण तत्त्वमें इस प्रकार टिका हुआ पुरुष अकेला भी पृथ्वीको जीतता है ।। २३७ ।।

या नाडी वहते चाङ्गे तस्यामेवाधिदेवता
सम्मुखेऽपदिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ।। २३८ ।।

अपने अंगमें जो नाडी (स्वर) बहती हो और उसी नाडीमें उस नाडीकी देवता और उसकी दिशा सम्मुख हो तो सब कार्योंका फल देती है ।। २३८ ।।

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समाचरेत् ।
सर्पमुद्रा कृता येन तस्य सिद्धिर्न संशय ।। २३९ ।।

मनुष्य पहिले मुद्राको करे पश्चात् युद्ध करे, जो मनुष्य सर्पमुद्रा करता है उसकी सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं ।। २३९ ।।

चन्द्रप्रवाहेऽप्यथ सूर्यवाहे
भटाः समायान्ति च योद्धुकामाः ।

समीरणस्तत्त्वविदां प्रतीतो
या शून्यता सा प्रतिकार्यनाशम् ।। २४० ।।

चन्द्रस्वरके अथवा सूर्यस्वरके चलनेके समय यदि समीरण (वायु तत्त्व) बहता हो और तत्त्वके ज्ञाताओंको बहता हुआ प्रतीत हो जाय तो युद्ध करनेके लिये भट (योद्धा) भले प्रकार आवेंगे और यदि शून्यता हो अर्थात् वायु व आकाशतत्त्व बहते हों तो कार्यका नाश होता है ।। २४० ।।

यां दिशं वहते वायुर्युद्धं तद्दिशि दापयेत् ।
जयत्येव न संदेहः शक्रोऽपि यदि चाग्रतः ।। २४१ ।।

जिस दिशाका पवनतत्त्व चलता हो उसी दिशामें युद्धके लिये सेनाको भेजें तो चाहे आगे इन्द्र भी हो तो जय होगी, इनमें सन्देह नहीं है ।। २४१ ।।

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदंगे प्राणमेव च
आकृष्य गच्छेत्कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम् ।। २४२ ।।

जिस नाडीका पवनतत्त्व बहता हो उसी नाडीके पवनसे कर्णपर्यंत आकर्षण (खींच) करके गमन करे तो पुरंदर (इन्द्र)को भी जीत सकता है ।। २४२ ।।

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णाङ्गः योऽभिरक्षति ।।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते ।। २४३ ।।

जो योधा प्रतिपक्ष (शत्रु) के प्रहारोंसे अपने संपूर्ण अंगोंकी रक्षा करता है उस योद्धाकी शक्तिको बलवान् शत्रु भी नष्ट नहीं कर सकते।। २४३ ।।

अंगुष्ठतर्जनीवंशे पांदागुष्ठे तथा ध्वनिः ।
युद्धकाले च कर्त्तव्यो लक्षयोद्धृजयो भवेद् ।। २४४ ।।

अंगूठा और तर्जनी अंगुलियोंके वंशमें और और चरणके अँगूठेमें युद्धके समय जो ध्वनि (शब्द) करे तो लक्ष योद्धाओंको जीत सकता है ।। २४४ ।।

निशाकरे रवौ चारे मध्ये यस्य समीरणः ।
स्थितो रक्षेद्दिगन्तानि जयकांक्षीगतः सदा ।। २४५ ।।

चन्द्रमा वा सूर्यके प्रवाहमें यदि वायुतत्त्व बहे तो उस समय गमन करने-वाला दिगंतोंकी रक्षा करता है और सदैव जयको पाता है ।। २४५ ।।

श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वांछितम् ।।
तस्यार्थः सिद्धिमायाति निर्गमेनैव सुंदरि ।। २४६ ।।

जिस मनुष्यके श्वासके प्रवेश समयमें दूत अपने मुखसे वांछित बातको कहे तो हे सुन्दरि ! गमन करते ही उस मनुष्य का अर्थ सिद्ध होता है ।। २४६ ।

लाभादीन्यपि कार्याणि पृष्टानि कीर्तितानि च ।
जीवेविशतिसिद्धचंतिहानिर्निनिः सरणे भवेत् ।। २४७ ।।

पूछे और कहे हुए लाभ आदि सम्पूर्ण कार्य जीव नाड़ीके प्रवेश समयम सिद्ध होते हैं और निकसनेके समय में नष्ट होते हैं ।। २४७ ।।

नरे दक्षा स्वकीया च स्त्रियां वामा प्रशस्यते ।
कुम्भकोयुद्धकालेच तिस्रोनाडचस्त्रयीगतिः ।। २४८ ।।

पुरुषोंकी अपनी दक्षिण नाड़ी और स्त्रियोंकी वाम नाडी और युद्धके समयमें कुम्भक नाडी श्रेष्ठ होती है, इस प्रकार तीन नाडी हैं और तीन ही उनकी गति हैं ।। २४८ ।।

हकारस्य सकारस्य विना भेदं स्वरः कथम् ।
सोऽहं हंसपदेनैव जीवो जयति सर्वदा ।। २४९ ।।

हकार और सकारके भेद विना स्वरज्ञान कैसे हो सकता है इससे जीव सोहं और हंस इन दो पदोंसे ही सर्वदा जयको प्राप्त होता है ।। २४९ ।।

शून्यांगं पूरितं कृत्वा जीवांगो गोपयेज्जयम् ।
जीवांगे घातमाप्नोति शून्यांगं रक्षते सदा ।। २५० ।।

शून्य अंगको पूर्ण करके जीवांगकी रक्षा करनेसे जय प्राप्त होता है, क्योंकि जीवांगमें घात (नाश) को प्राप्त होता है और शून्यांग सदैव रक्षा करता है ।। २५० ।।

वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः ।
पूर्णे घातो न जायेत शून्ये घातं विनिर्दिशेत् ।। २५१ ।।

यदि प्रश्नका कर्ता वाम वा दक्षिणकी तरफ बैठा हुआ युद्धका प्रश्न करे और उस समय पूर्ण स्वर हो तो नाश न होगा और शून्य हो तो घात होगा यह कहे ।। २५१ ।।

भूतत्त्वेनोदरे घातः पदस्थानेऽम्बुना भवेत् ।
ऊरुस्थानेऽग्नित्त्वेन करस्थाने च वायुना ।। २५२ ।।

प्रश्नके समय पृथ्वीतत्त्व उदरमें हो, जलतत्त्व पैरोंमें हो, अग्नितत्त्व जंघाओंमें हो और हाथोमें वायुतत्त्व हो तो घात होगा अर्थात् शस्त्र लगेगा ।। २५२ ।।

शिरसि व्योमतत्त्वे च ज्ञातव्यो घातनिर्णयः ।
एवं पञ्चविधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितः ।। २५३ ।।

यदि आकाशतत्त्व बहता हो तो शिरमें घावका निर्णय जानना इस प्रकार स्वरशास्त्रमें पांच प्रकारका घाव प्रकाशित किया है ।। २५३ ।।

युद्धकाले यदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् ।
यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते तदा ।। २५४ ।।

जब युद्धके समयमें चंद्रमाका स्वर चलता हो तो स्थायी (जिसपर चढाई की जाय) को निश्चयसे जय होगी और जो सूर्यके स्वरका प्रवाह हो तो यायी (चढ़नेवाले) की जय हो ।। २५४ ।।

जयमध्ये तु संदेहे नाडीमध्यं तु लक्षयेत् ।
सुषुम्नायां गते प्राणे समरे शत्रुसंकटः ।। २५५ ।।

जो जयके मध्यमें संदेह हो तो नाडीके मध्यमें देखे, यदि प्राणवायु सुषुम्ना नाडीमें चलना हो तो संग्राममें शत्रुको संकट हो ।। २५५ ।।

यस्या नाड्या भवेच्चारस्तां दिशं युधि संश्रयेत् ।
तदाऽसोजयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।। २५६ ।।

जिस नाडीका चार (चलना) हो युद्धके समयमें उसी दिशामें खड़ा हो अर्थात् चन्द्रनाडीमें पूर्व अथवा उत्तरमें, सूर्य नाडीमें दक्षिण अथवा पश्चिम इस प्रकार वह युद्ध करनेवाला जयको प्राप्त होता है, इसमें कुछ विचार नहीं करना ।। २५६ ।।

यदि संग्रामकाले तु वामनाडी सदा वहेत् ।
स्थायिनोविजयं विद्याद्रिपुवश्योदयोऽपिच ।। २५७ ।।

यदि संग्रामके समय वाम नाडी बहती हो तो स्थायीका विजय जान और शत्रुके वशमें यायीका होना समझे ।। २५७ ।।

यदि संग्रामकाले तु सूर्यस्त व्यावृतो वहेत्
तदा यायिजयं विद्यात्सदेवासुर मानवे ।। २५८ ।।

जो संग्रामके समय सूर्यका स्वर लगातार बहता हो तो उस समय देवता राक्षस मनुष्यके युद्धमें यायीका जयको जानना ।। २५८ ।।

रणे हरति शत्रुस्तं वामायां प्रविशेन्नरः ।
स्थानं विषुवचारेण जयः सूर्येण धावता ।। २५९ ।।

जो मनुष्य वामनाडीके प्रचारमें युद्धमें प्रवेश करता है उसको संग्राममे शत्रु हर लेते हैं । और सुषुम्ना नाडीके बहते जो गमन करे उसको स्थान मिलता है अर्थात् युद्ध नहीं होता ! सूर्यस्वरके बहते गमन करे तो जयको प्राप्त होता है ।। २५९ ।।

युद्धद्वये कृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमे जयः ।
रिक्ते चैवद्वितीयस्तु जयी भवति नान्यथा ।। २६० ।।

यदि एक समय युद्ध विषयकप्रश्न दो हों तो उस समय पूर्ण स्वर बहता हो तो प्रथमका जय और रिक्त स्वर बहता हो तो दूसरेका जय, अन्यथा नहीं ।। २६० ।।

पूर्णनाड़ीगतः पृष्ठे शून्यांगं च तदाग्रतः ।
शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ।। २६१ ।।

यदि पूर्व नाडीमें गया हो तो शत्रु पीठपर आवे अर्थात् शत्रु पीठ देकर भाग जांय, शून्य नाडीका अङ्ग हो तो शत्रु आगे आवे और शून्य स्थानमें किया हुआ शत्रु मरणको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ।। २६१ ।।

वामचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत् ।
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः ।। २६२ ।।

यदि कोई वाम भागमें बैठकर प्रश्न करे तो उसके प्रश्नके वा जिस बात को पूछे उसके समाक्षर हों तो उसका जय और विषम अक्षरवालेका पराजय होता है । यदि दक्षिण भागमें बैठकर प्रश्न करे तो विषम अक्षर वालेका जय और सम अक्षरवालेका पराजय हो ।। २६२ ।।

यदा पृच्छति चन्द्रस्य तदा सन्धानमादिशेत् ।
पृच्छेद्यदा तु सूर्यस्य तदा जानीहि विग्रहम् ।। २६३ ।।

यदि पूछनेके समयमें चन्द्रमाका स्वर चले तो संन्धि (मिलाप) को कहे, यदि सूर्यके स्वरमें प्रश्न करे तो उस समय विग्रह(लड़ाई) को जाने ।। २६३ ।।

पार्थिवे च समंयुद्धं सिद्धिर्भवति वारुणे ।
युद्धे हि तैजसो भंगो मृत्युर्वायौ नभस्यपि ।। २६४ ।।

यदि पृथ्वीतत्त्वमें युद्धका आरम्भ हो तो युद्धमें बराबरी, जलके तत्त्वमें जयकी प्राप्ति, तेजके तत्वमें भङ्ग (नाश) वायु और आकाशतत्त्वमें मृत्यु होती है ।। २६४ ।।

निमित्तकप्रमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः ।
पृच्छाकाले तदा कुर्यादिदं यत्नेनबुद्धिमान् ।। २६५ ।।

यदि किसी निमित्तसे अथवा प्रमादसे प्रश्नके समयमें दक्षिण या उत्तर स्वरका ज्ञान न हो तब बुद्धिमान् मनुष्य यत्नसे यह करे कि ।। २६५ ।।

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पं हस्तान्निपातयेत् ।
पूर्णाङ्गे पुष्पपतनं शून्यं वा तत्परं भवेत् ।। २६६ ।।

निश्चल धारणा करके अपने हाथसे पुष्पको पृथ्वीपर गेरे, जो अग्रभागमें पुष्प पडे तो पूर्ण फल और दूर पडे तो शून्य फल जानना ।। २६६ ।।

तिष्ठन्नुपविशंश्चापि प्राणमाकर्षयन्निजम् ।
मनोभङ्गमकुर्वाणः सर्वकार्येषु जीवति ।। २६७ ।।

जो मनुष्य खड़ा होता और बैठता हुआ अपनी प्राणवायुको निश्चल मनसे शरीरके भीतर आकर्षण (खींचना) करता है वह सब कार्योंके विषे जीवता है अर्थात् उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं ।। २६७ ।।

न कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्नगाः ।
न शत्रु व्याधिचोराद्याः शून्यस्थानाशितुंक्षमाः ।। २६८ ।।

काल और अनेक प्रकारके भयानक शस्त्र, सर्प, शत्रु व्याधि और चोर आदि शून्य स्थानमें टिके ये सब मनुष्यको नाश करनेको समर्थ नहीं होते ।। २६८ ।।

जीवेन स्थापयेद्वायुं जीवेनारम्भयेत्पुनः ।
जीवेन क्रीडते नित्यं द्यूते जयति सर्वथा ।। २६९ ।।

जीव स्वरसे वायुको स्थिर करे, फिर जीवसे ही वायुका आरंभ करे, जीवसे ही द्यूतक्रीडाका आरंभ करे तो द्यूत में सर्वथा जय होती है ।। २६९ ।।

स्वरज्ञानिबलादग्रे निष्फलं कोटिधा भवेत् ।
इह लोके परत्रापि स्वरज्ञानी बली सदा ।। २७० ।।

स्वरज्ञानीके बलके आगे कोटि प्रकारके भी बल निष्फल होते हैं, क्योंकि स्वरका ज्ञानी इस लोकमें और परलोकमें सदैव बलवान् होता है ।। २७० ।।

दश शतायुतं लक्षं देशाधिपबलंक्वचित् ।
शतक्रतुसुरेन्द्राणां बलं कोटिगुणं भवेत् ।। २७१ ।।

किसी मनुष्यको दश, किसीको शत, किसीको दश सहस्र किसीको लक्ष, किसीको देशके राज्यका बल होता है इन्द्र और ब्रह्मा आदि देवताओंको उनसे कोटिगुना बल होता है, इसी प्रकार स्वरका बल सब बलोंसे कोटिगुना है ।।२७१ ।।

देव्युवाच

परस्परं मनुष्याणां युद्धे प्रोक्तो जयस्त्वया ।
यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जयः ।। २७२ ।।

पार्वती बोली कि, मनुष्योंके परस्पर युद्धमें जयकी प्राप्ति आपने कही, जब यमराजके संग युद्ध हो तब मनुष्यकी किस प्रकार जय हो ।। २७२ ।।

ईश्वर उवाच

ध्यायेद्देवं स्थिरो जीवं जुहुयाज्जीवसंगमे ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ।। २७३ ।।

महादेव बोले–कि हे पार्वती ! जो मनुष्य स्थिर होकर देवताओंका ध्यान करे और जीवसंगम (कुम्भक) प्राणवायुमें जीवका होम करे उस मनुष्य को इष्टकी सिद्धि, महालाभ और जय प्राप्त होगा ।। २७३ ।।

निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।
तत्साकारं निराकारं ज्ञाने भवति तत्क्षणात् २७४ ।।

निराकार परमेश्वरसे आकारवाला सब जगत् उत्पन्न हुआ है, निराकार परमेश्वरके ज्ञानसे यह जगत् साकार (आकारवाला) उसी क्षणमें हो जाता है ।। २७४ ।।

श्रीदेव्युवाच

नरयुद्धं यमयुद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वर ।
इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद ।। २७५ ।।

पार्वती बोली कि, हे महेश्वर ! मनुष्य और यमराजका युद्ध आपने वर्णन किया, अब देवताओंके देवोंको वशमें करना कहो ।। २७५ ।।

ईश्वर उवाच

चन्द्रं सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले ।
आजन्मवशगा रामा कथितेयं तपोधनैः ।। २७६ ।।

महादेव बोले—कि, स्त्रीके चन्द्रस्वरको अपने सूर्यस्वरसे आकर्षण करके अपने जीवस्वरको मंगलमें टिकावे तो स्त्री जन्मभर अपने वशमें होती है यह तपस्वियोंने कहा है,यह क्रिया अपनी विवाही स्त्रीमें ही हो सकती है ।। २७६ ।।

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते ।
जीवस्थाने गतो जीवो बालाजीवातुकारकः ।। २७७ ।।

पुरुष अपने जीवस्वरसे स्त्रीके जीवस्वरको ग्रहण करे और स्त्रीके जीवस्वरमें अपना जीवस्वर दे, इस प्रकार जीवके स्थान में गया हुआ जीव जिसका ऐसा पुरुष जन्मभरतक स्त्रीके वशमें रहता है ।। २७७ ।।

रात्र्यन्तयामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने ।
ब्रह्मजीवं पिबेद्यस्तु बालाप्राणहरो नरः ।। २७८

रात्रिके पिछले पहरमें स्त्रीकी निद्राके समय जो मनुष्य ब्रह्म जीव (सुषुम्ना स्वर) को पीता है वह मनुष्य स्त्रियोंके प्राणोंको वशमें करता है ।। २७८ ।।

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन्काले गते सति ।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ।। २७९ ।।

उस कालके व्यतीत होनेपर अष्टाक्षरमंत्रको जपकर जो पुरुष अपना चन्द्रस्वर स्त्रीको देता है तो वह कामिनी उसी क्षणमें मोहको प्राप्त होती है ।। २७९ ।।

शयने वा प्रसङ्गे वा युवत्यालिङ्गनेऽपि वा ।
यः सूर्येण पिबेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ।। २८० ।।

शयनके समय वा स्त्रीके संगममें अथवा स्पर्शके समय जो मनुष्य अपने सूर्यस्वरसे स्त्रीके चन्द्रस्वरको पीता है वह मनुष्य कामदेवके समान मोह करनेवाला होता है ।। २८० ।।

शिव आलिङ्ग्यते शक्त्या प्रसंगे दक्षिणेऽपिवा ।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनीशतम् ।। २८१ ।।

यदि शिव स्वर (सूर्य) शक्ति स्वरसे (चन्द्र) स्त्रीसंगके समय मिल जाय,अथवा पुरुष अपना चन्द्रस्वर स्त्रीको दे तो पुरुष सौ कामिनियोंको मोह सकता है ।। २८१ ।।

नव सप्त त्रयः पञ्च वारान्सङ्गस्तु सूर्यभे ।
चन्द्रे द्वितुर्यषट्कृत्वोवश्याभवतिकामिनी ।। २८२

स्त्रीके चन्द्र स्वरको अपने सूर्यस्वरमें देनेके अनंतर नव ९ सात ७ तीन ३ वा पांच ५ वार संग हो जाय अथवा स्त्रीके चन्द्रस्वरमें अपना सूर्यस्वर कर दो २ चार वा छः ६ वार मिल जाय तो वह कामिनी वशमें होती है ।। २८२ ।।

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याऽधरोष्ठयोः ।
महापद्मे मुखं स्पृष्ट्वा वारंवारमिदं चरेत् ।। २८३

अपने सूर्य और चन्द्रस्वरको सर्पकी गतिसे खींचकर अधरोष्ठोंपर स्त्रीके मुखसे अपना मुख स्पर्श करके बारंबार पूर्वोक्त प्रकारसे चन्द्र और सूर्यका मेल करे ।। २८३ ।।

आप्राणमिति पद्मश्च यांवन्निद्रावशं गता ।
पश्चाज्जागर्ति वेलायां चोष्यते गलचक्षुषी ।। २८४ ।।

जितने समय स्त्री निद्राके वशमें रहे तबतक पूर्वोक्त प्रकारसे स्त्रीके मुखपद्मका पान करे पीछे जागनेके समय गला व नेत्र इनका चुम्बन करे ।। २८४ ।।

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनीः ।
इदंनवाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा पारमेश्वरी ।। २८५ ।।

इसी विधिसे कामी पुरुष सब कामिनियोंको वशमें करता है, परंतु मेरी यह सच्ची आज्ञा है कि, यह वशीकरण किसी अन्यपुरुषको अर्थात् लंपटको न कहे ।। २८५ ।।

इति वशीकरणम्

अथ गर्भकरणम्

ऋतुकालभवा नारी पञ्चमेऽह्नि यदा भवेत् ।
सूर्याचन्द्रमसयोर्योगे सेवनात्पुत्रसम्भवः ।। २८६ ।।

ऋतुस्नानके अनंतर जब स्त्रीको पांचवां दिन हो उस समय पुरुषका सूर्यस्वर स्त्रीका चन्द्रस्वर चलता हो तो उस समय स्त्रीके संग करनेसे पुत्रका जन्म होता है ।। २८६ ।।

शङ्खवल्लीं गवां दुग्धे पृथ्व्यापो वहते यदा ।
भर्तुरेवं वदेद्वाक्यं दर्पं देहि त्रिभिर्वचः ।। २८७ ।।

जिस समय पृथ्वी और जलतत्त्व बहते हों उस समय स्त्रीको गौके दूध में शंखवल्लीको खिलावे, फिर स्त्री अपने भर्तासे तीन बार भोगकी प्रार्थना करे ।। २८७ ।।

ऋतुस्नाता पिबेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत् ।
रूपलावण्यसंपन्नो नरसिंहः प्रसूयते ।। २८८ ।।

जब स्त्री ऋतुस्नानके अनंतर उक्त औषधको पीले तब पुरुष ऋतुदान दे अर्थात् भोग करे तो सुरूप और पराक्रमी सुन्दर नरोंमें सिंह पैदा होता है ।। २८८ ।।

सुषुम्नासूर्यवाहेन ऋतुदानं तु योजयेत् ।
अंगहीनः पुमान्यस्तु जायतेऽत्रकुविग्रहः ॥ २८९ ॥

जो मनुष्य सूर्यस्वरके प्रवाहके संग सुषुम्नास्वरके बहनेके समय ऋतुदान देता है उसके अंगहीन और कुरूप पुत्र पैदा होता है ॥ २८९ ॥

विषमांके दिवारात्रौ विषमांके दिनाधिपः ।
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् २९० ॥ ।

ऋतुके अनंतर विषम दिनोंमें पुरुषका सूर्यस्वर दिन व रात्रिमें चले अर्थात् स्त्रीका चन्द्रस्वर चले और पृथ्वी, जल, अग्नि इन तत्त्वोंमें गर्भाधान हो तो वंध्या भी पुत्रको प्राप्त होती है ॥ २९० ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां स्त्रीणां चैव सुधाकरः ।
उभयोः संगमे प्राप्तो वंध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ २९१ ॥

यदि ऋतुके आरम्भमें पुरुषोंका सूर्यस्वर और स्त्रीका चन्द्रस्वर चले और दोनोंका संगम हो जाय तो वंध्या स्त्री पुत्रको प्राप्त हो जाय ॥ २९१ ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां शुक्रान्ते च सुधाकरः ।
अनेन क्रमयोगेन नादत्ते दैवदारुकम् ॥ २९२ ॥

यदि भोगके आरंभमें पुरुषका सूर्यस्वर चले और वीर्यपातके अनंतर चन्द्रस्वर बहने लगे तो इस क्रमयोगसे स्त्री गर्भ धारण नहीं करती ॥ २९२ ॥

चन्द्रनाडी यदा प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत् ।
सूर्यो भवेत्तदा पुत्रो द्वयोर्गर्भो विहन्यते ॥ २९३ ॥

यदि गर्भवतीके प्रश्नके समयमें चन्द्रमाकीं नाडी चले तो गर्भमें कन्या होती है और सूर्यस्वर चले तो पुत्र और दोनों स्वर चलें तो गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ २९३ ॥

पृथ्वी पुत्री जले पुत्रः कन्यका तु प्रभञ्जने।
तेजसि गर्भपातः स्यान्नभस्यपि नपुंसकः ।। २९४ ।।

प्रश्नके समयमें पृथ्वीतत्त्व हो तो कन्या, जलतत्त्व हो तो पुत्र, वायुतत्त्व हो तो कन्या, तेजतत्त्व हो तो गर्भका पात, आकाशतत्त्व हो तो नपुंसक होता है ।। २९४ ।।

चन्द्रे स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्यमार्गे नपुंसकः ।
गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णः पुत्रः प्रजायते ।। २९५ ।।

गर्भके प्रश्नसमय चन्द्रस्वर हो तो कन्या सूर्यस्वर हो तो पुत्र, सुषम्नाका स्वर हो तो नपुंसक होता है, यदि पूछनेवाले दूतके पूर्ण अंग हों तो पुत्र पैदा होता है ।। २९५ ।।

शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे ।
तत्त्ववित्स विजानीयात्कथितं तत्तु सुन्दरि ।। २९६ ।।

हे सुन्दरी ! पूछनेवालेके अंग शून्य हों तो शून्य, दो स्वर चलते हों तो युग्म (दो), यदि स्वरोंके संक्रम या सुषुम्ना हों तो गर्भका पात तत्त्वोंका वेत्ता जाने ।। २९६ ।।

गर्भाधानं मारुते स्याच्च दुःखी दिक्षु ख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः। गर्भस्रावः स्वल्पजीवश्च वह्नौ, भोगी भव्यः पार्थिवेनार्थयुक्तः ।। २९७ ।।

वायुतत्त्वमें गर्भाधान हो तो दुःखवाला और जलतत्त्वमें गर्भाधान हो तो दिशाओंमें विख्यात और सुखी, अग्नितत्त्वमें हो तो गर्भका पात अथवा अल्प जीवी, पृथ्वीतत्त्वमें हो तो भोगी, सुन्दर और धनवान् पुत्र पैदा होता है ।। २९७ ।।

धनवान्सौख्ययुक्तश्च भोगवानार्थसंस्थितिः ।
स्यान्नित्यंवारुणेतत्वेव्योम्निगर्भोविनश्यति ॥ २९८ ॥

जलतत्त्वमें गर्भाधान हो तो धनवान सुखी भोगवान् जिनके नित्य धन रहे ऐसा पुत्र पैदा होता है आकाशतत्त्वमें गर्भाधान हो तो गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ २९८ ॥

माहेन्द्रे सुसुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिता भवेत् ।
शेषेषुगर्भहानिःस्याज्जातमात्रस्यवामृतिः ॥ २९९ ॥

पृथ्वीतत्त्वमें गर्भाधान हो तो पुत्रकी और जलतत्त्वमें रहे तो कन्याकी उत्पत्ति होती है और शेष तत्त्वमें रहे तो गर्भकी हानि वा पैदा होतेही मरण होता है ॥ २९९ ॥

रविमध्यगतश्चन्द्रश्चन्द्रमध्यगतो रविः ।
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न वेदशास्त्रकोटिभिः ॥ ३०० ॥

सूर्यस्वरके मध्यमें चंद्रस्वरके मध्यमें सूर्यकी गति गुरुसे शीघ्र जा ने, यह बात वेद और कोटि शास्त्रोंसे नहीं जानी जाती ॥ ३०० ॥

इति गर्भप्रकरणम्

अथ संवत्सरफलम्

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्त्वविभेदतः ।
पश्येद्विचक्षणो योगी दक्षिणे चोत्तरायणे ॥ ३०१ ॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको प्रातःकालके समय तत्त्वोंके विभेदसे विचक्षण (पंडित) योगी दक्षिणायन और उत्तरायण देखे अर्थात् उस दिन के तत्त्वोंके बहनेसे वर्षभरके फलको देखे ॥ ३०१ ॥

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानोऽत्र तत्त्वतः ।
पृथिव्यापस्तथा वायुः सुभिक्षं सर्वसस्यजम् ।। ३०२ ।।

चन्द्रस्वरके उदयके समय यदि पृथ्वी जल वा वायुतत्त्व चले तो खेतियोंको सुभिक्ष होता है ।। ३०२ ।।

तेजोव्योम्नोर्भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्त्वतः ।
एवं तत्त्वफलं ज्ञेयं वर्षे मासे दिनेष्वपि ।। ३०३ ।।

यदि चन्द्रस्वरमें तेज और आकाशतत्त्व चलते हों तो घोर भय और दुर्भिक्ष होता है इसी प्रकार समयके तत्त्वानुसार वर्ष, मास और दिनोंमें भी संपूर्ण तत्त्वोंका फल जानना ।। ३०३ ।।

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वेषु कर्मसु ।
देशभंगमहारोगक्लेशकष्टादि दुःखदा ।। ३०४ ।।

मध्यमा (सुषुम्ना) नाडी क्रूर और सब कर्मोंमें दुष्ट (बुरी), देशका भंग महारोग, क्लेश कष्ट आदि अत्यन्त दुखोंको देती है ।। ३०४ ।।

मेषसंक्रान्तिवेलायां स्वरभेदं विचारयेत् ।
संवत्सरफलंब्रूयाल्लोकानां तत्त्वचिन्तकः ।। ३०५ ।।

यदि मेषकी संक्रांतिके समय स्वरके भेदको विचारे तो तत्त्वका चिंतक मनुष्य लोगोंको संवत्सरका फल कह सकता है ।। ३०५ ।।

पृथिव्यादिकतत्त्वेन दिनमासाब्दजं फलम् ।
शोभनं च यथा दुष्टंव्योममारुतवह्निभिः ।। ३०६ ।।

मेषसक्रांतिके समय पृथ्वी आदि तत्त्वोंसे दिन, मास और वर्ष का फल शोभन जाने और आकाश, पवन और अग्नितत्त्वसे दुष्ट फल जाने ।। ३०६ ।।

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्याद्बहुसस्या वसुन्धरा ।
बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्त्वं वहेद्यदि ।। ३०७ ।।

यदि मेष संक्रांतिके दिन पृथ्वीतत्त्व चले तो सुभिक्ष देशकी वृद्धि पृथ्वीमें बहुत अन्न, बहुत वृष्टि और बहुत सुख होता है ।। ३०७ ।।

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च !
बहुसस्या तथा पृथ्वी अप्तत्त्वं वैवहेद्यदि ।। ३०८ ।।

यदि जलतत्त्व उस दिंन बहता हो तो अतिवृष्टि, सुभिक्ष, आरोग्य और सुख और पृथ्वीमें बहुत खेती होती है ।। ३०८ ।।

दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गः स्यादुत्पत्तिश्च विनश्यति ।
अल्पादल्पतरा वृष्टिरग्नितत्त्वं वहेद्यदि ।। ३०९ ।।

यदि अग्नितत्त्व चलता हो तो दुर्भिक्ष, देशका भङ्ग और उत्पत्तिका नाश और बहुत स्वल्प वृष्टि होती है ।। ३०९ ।।

उत्पातोपद्रवा भीतिरल्पा वृद्धिः स्युरीतयः ।
मेषसंक्रान्तिवेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि ।। ३१० ।।

यदि [1]मेषसंक्रांतिके समय वायुतत्त्व चलता हो तो उत्पात उपद्रव भीति अल्पवृष्टि ईति (मसे लगना आदि छः) होती हैं ।। ३१० ।।

मेषसंक्रातिवेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि ।
तत्रापि शून्यता ज्ञेयासस्यादीनां सुखस्य च ।। ३११ ।।

यदि मेषसंक्रांतिके समय आकाशतत्त्व बहता हो तो सस्य आदि और सुखकी शून्यता जाननी ।। ३११ ।।

१—"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाश्शलभाः शुकाः ।अत्यावसन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ।।"

पूर्णप्रवेशने श्वासे सस्यं तत्त्वेन सिध्यति।
सूर्यचंद्रेऽन्यथाभूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः ॥ ३१२ ॥

यदि श्वासका पूर्ण प्रवेश होजाय तो तत्त्वसे धान्य की सिद्धि होती है और यदि तत्त्वोंके उदयके समय सूर्य व चन्द्र स्वर विपरीत हो जाय तो और चन्द्रके योगमें सूर्य और सूर्यके योगमें चन्द्र हो तो अन्नका संग्रह सिद्धि (लाभ) को देता है ॥ ३१२ ॥

विषमे वह्नितत्त्वं स्याज्जायते केवलं नभः।
तत्कुर्याद्वस्तुसंग्राहो द्विमासे च महर्घता ॥ ३१३ ॥

यदि विषम (दक्षिण) स्वरमें अग्नितत्त्व हो अथवा केवल आकाशतत्त्व हो तो उस समय वस्तुओंका संग्रह करे तो दो मासमें महर्घता (महँगापन) होगी ॥ ३१३ ॥

रवौ संक्रमते नाडी चन्द्रमन्ते प्रसर्पिता।
खनिले वह्नियोगेन रौरवं जगतीतले ॥ ३१४ ॥

यदि रात्रि समय सूर्यकी नाडी बहती हो और प्रातःकालके समय चन्द्रमा की बहने लगे और उस समय आकाश पवन अग्नितत्त्व इनका योग हो तो पृथ्वी के तलपर रौरव (बडे २ अनर्थ) होते हैं ॥ ३१४ ॥

इति संवत्सरप्रकरणम्

अथ रोगप्रकरणम्

महीतत्त्वे स्वरोगश्च जले च जलमातृतः ।
तेजसि खेटवाटीस्था शाकिनो पितृदोषतः ।। ३१५ ।।

यदि प्रश्नके समय पृथ्वीतत्त्व बहता हो तो स्व (प्रारब्ध) का रोग, जलतत्त्व जलता हो तो जलौका मातृकाओंका, तेजतत्त्व बहता हो तो खेट-वाटीमें रहनेवाली शाकिनी वा पितृदोष (पीडा) से रोगका होना समझना ।। ३१५ ।।

आदौशून्यगतो दूतः पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि ।
मूर्च्छितोऽपिध्रुवं जीवेद्यदर्थं परिपृच्छति ।। ३१६ ।।

यदि पूछनेवाला दूत पहिले शून्य अंगकी तरफ आया हो और पश्चात् (पीछे) पूर्ण अंगकी तरफ़ बैठ जाय तो मूर्च्छित भी वह रोगी निश्चय से जी जायगा जिसके लिये वह पूछता है ।। ३१६ ।।

यस्मिन्नङ्गे स्थितो जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति ।
तदा जीवति जीवोऽसौ यदि रोगैरुपद्रुतः ।। ३१७ ।।

यदि जिस अंगमें जीव स्थित हो उसी अंगकी तरफ बैठा हुआ प्रश्न करे तो रोगोंसे पीडित भी वह जीव अवश्य जीवेगा ।। ३१७ ।।

दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत् ।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं भवेत् ।। ३१८ ।।

यदि वायु दक्षिणनाडीकी बहती हो और दूतके मुखसे भयानक वचन निकले तो वह जीव जीवेगा और चन्द्रस्वर हो तो समान फल होता है ।। ३१८ ।।

जीवाकारं च वा धृत्वा जीवाकारं विलोक्य च ।
जीवस्थोरजीवितप्रश्नेतस्याज्जीवितंफलम् ।। ३१९ ।।

जीवाकारको धारकर और देखकर जीवमें स्थित हुआ दूत जीनेका प्रश्न करे तो उसको जीवनका फल होता है ।। ३१९ ।।

वामचारे तथा दक्षप्रवेशे यत्र वाहने ।
तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ।। ३२० ।।

वामनाडी (इडा) अथवा दक्षिण नाडी (पिंगला) इन इन दोनोंके चलने वा प्रवेश करनेके समय जो दूत प्रश्न करे तो इसकी सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं ।। ३२० ।।

प्रश्ने चाधः स्थितो जीवो नूनं जीवोहि जीवति ।
ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवो याति यमालयम् ।।३२१।।

यदि प्रश्नके समय दूत अधोभागमें स्थित हो तो वह रोगी जीव निश्चयसे जीवे, यदि जीव ऊर्ध्व भागमें स्थित हो तो यमालय में जायगा ।। ३२१ ।।

विपरीताक्षरप्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि ।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति ।। ३२२ ।।

यदि विषमनाडी (सुषुम्ना) का उदय हो और प्रश्नका कर्त्ता रिक्त नाडीमें ऐसा प्रश्न करे जिसके अक्षर विषम (१–३–५) आदि हों तो विपरीत फल जानना ।। ३२२ ।।

चन्द्रस्थाने स्थितो जीव सूर्यस्थाने तु पृच्छकः ।
तदा प्राणवियुक्तोऽसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः ।। ३२३ ।।

यदि अपना जीव (श्वासवायु) चन्द्रमाके चारमें स्थित हो और प्रश्नकर्ता सूर्यके चारमें स्थित हो तो यह रोगी चाहे सौ वैद्योंसे युक्त हो तो भी मर जायगा ।। ३२३ ।।

पिङ्गलायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति ।
तदाऽपि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ।। ३२४ ।।

यदि जीव पिंगलामें स्थित हो और दूत वामभागमें स्थित होकर पूछे तो उस समय भी रोगी मर जायगा, चाहे महादेव भी रक्षा क्यों न करें ।। ३२४ ।।

एकस्यभूतस्यविपर्ययेण रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् ।
तयोर्द्वयोर्बन्धुहृद्विपत्तिः पक्षक्षये व्यत्ययतो मृतिः स्यात् ।। ३२५ ।।

एक भूत, (तत्त्व) के विपरीत होनेसे भी पुरुषोंके रोग तिरस्कार कर देते है और दो तत्त्वोंके विपरीत होनेसे बन्धु और मित्रोंसे विपत्ति होती है, यदि दो पक्ष और (एक मास) तक व्यत्यय चला जाय तो मृत्यु होती है ।। ३२५ ।।

इति रोगप्रकरणम्

अथ कालप्रकरणम्

मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम् ।
क्षयकालं परीक्षेत वायुचारवशात्सुधीः ।। ३२६ ।।

मास पक्ष, और वर्ष इन तीनोंके क्रमसे आदिमें विद्वान् मनुष्य वायुके प्रचारवशसे क्षय (मरण) के समयकी परीक्षा करे ।। ३२६ ।।

पञ्चभूतात्मकं दीपं शिवस्नेहेन सिञ्चितम् ।
रक्षयेत्सूर्यवातेन प्राणी जीवः स्थिरोभवेत् ।। ३२७ ।।

इस पंचभूतात्मक दीप (देह) को शिवरूप स्नेह (तेल) से सींच कर सूर्यरूप पवनसे जो प्राणी रक्षा करता है उसका जीव स्थिर होता है ।। ३२७ ।।

मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बन्धयते यदि ।
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकालेऽपि वञ्चिते ।। ३२८ ।।

जो मध्य प्राणवायुको बांधकर दिन भर सूर्यस्वर का बंचन करता है इस प्रकार अभ्यासके बलसे सूर्यकालका बन्धन करके वह जीव जी सकता है ।। ३२८ ।।

गगनात्स्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिञ्चयेत् ।
कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात् ।। ३२९ ।।

आकाशमें गमन करनेसे चन्द्रमाकी किरण नीचे गिरकर देहरूपी कमलों को सींचती है, इस प्रकार कर्म योगसे योगी चन्द्रमाका आश्रय लेनेसे अभ्यास के द्वारा अमर हो जाता है ।। ३२९ ।।

शशांक वारयेद्रात्रौ दिवा वार्यो दिवाकरः ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं सयोगी नात्रसंशयः ।। ३३० ।।

जो रात्रिमें चन्द्रस्वरका और दिनमें सूर्य स्वरका निवारण करता है, इसप्रकार अभ्यासमें तत्पर वह योगी ही योगी है, इसमें सन्देह नहीं है ।। ३३० ।।

अहोरात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः ।
तदा तस्य भवेन्मृत्युः संपूर्णे वत्सरत्रये ।। ३३१ ।।

जिस मनुष्यकी प्राणवायु (श्वास) अहोरात्रभर एक स्थानमें ही बहता रहे तब उस मनुष्यकी मृत्यु तीन वर्षमें हो जायगी ।। ३३१ ।।

अहोरात्रद्वयं यस्य पिंगलायां सदा गतिः
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ।। ३३२ ।।

जिस मनुष्यके श्वासकी गति दो अहोरात्र पिंगलामें रहे तत्त्वके ज्ञाताओंने उस मनुष्यका जीवन दो वर्षका कहा है ।। ३३२ ।।

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः
तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदंति मनीषिणः ।। ३३३ ।।

जिस मनुष्य का प्राणवायु तीन रात्रितक एक ही नासिकाके पुटमें स्थिर होकर चले तो विद्वान् मनुष्य उसकी अवस्था एक वर्ष की कहते हैं ।।३३३ ॥

रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरन्तरम् ।
जानीयात्तस्यवैमृत्युः षण्मासाभ्यंतरेभवेत् ।। ३३४ ।।

जिस मनुष्यका रात्रिमें चन्द्रस्वर और दिनमें सूर्यस्वर निरन्तर बहे उस मनुष्यकी छः महीनेके भीतर मृत्यु होती है ।। ३३४ ।।

लक्ष्यं लक्षितलक्षणेन सलिले भानुर्यदा दृश्यते
क्षीणो दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरः षट्त्रिद्विमासैकतः ।
मध्यं छिद्रमिदं भवेद्दशदिनं धूमाकुलं तद्दिने सर्वज्ञैरपि भाषितं
मुनिवरैरायुः प्रमाणंस्फुटम् ।। ३३५ ।।

जिस मनुष्यको जलके विषे, सूर्यका प्रतिबिंब क्षीण (कटा हुआ) क्रमसे दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्वमें दीखे वह छः तीन ३ दो २ एक १ मास जीवेगा अर्थात्, दक्षिणमें जिसको कटा दीखे उसकी छः ६ और पश्चिममें तीन ३, उत्तरमें २, पूर्वमें एक मासकी अवस्था समझनी यदि प्रतिबिंबके मध्यमें छिद्र

दीखे तो दश दिनकी अवस्था जाननी. यदि सम्पूर्ण प्रतिबिंबमे धूमसा प्रतीत होतो उसी दिन मृत्यु जाननी यह सर्वज्ञ मुनिवरोंने अवस्थाका प्रकट प्रमाण कहा है ।। ३३५ ।।

दूतः कृष्णकषायकृष्णवसनो दन्तक्षत्तो मुण्डितस्तैलाभ्यक्त-शरीररज्जुककरो दीनोऽश्रुपूर्णोत्तरः । भस्माङ्गारकपालपाशमुसली सूर्यास्त-मायाति यः काली शून्यपदस्थितो गदयुतः कालानल स्यादूतः ।। ३३६ ।।

यदि प्रश्न करनेवाला दूत काले भगवे वस्त्र धारण कर अथवा दूतके दांतोंमें घाव हो, मुण्डितहो, तैलाभ्यंग किये हो हाथमें रस्सी लिये हो, दीन हो, अश्रुपूर्ण अर्थात् उत्तर देनेमें अश्रुयुक्त अस्फुटवचन और भस्म, अंगार, कपाल, मुसल ये जिसके हाथमें हों जो सूर्यास्तके समय आवे और जिसके पैर शून्य हों इतने प्रकारका दूत पूछनेको आवे तो रोगी कालको प्राप्त होगा ऐसा जाने । ३३६

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पातः सन्निपाताग्रलक्षणम् ।। ३३७ ।।

जिस रोगीके चित्तमें अकस्मात् विकार हो जाय और अकस्मात् उत्तर हो जाय और अकस्मात् इंद्रियोंमें उत्पात होजाय ये संन्निपातके पूर्व लक्षण जानने ।। ३३७ ।।

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृता भवेत् ।
तदरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ।। ३३८ ।।

जिसका शरीर शीतल हो, प्रकृतिमें विकार हो तो संक्षेपमें अरिष्ट जानना और मेरे सकाशसे विस्तारसे श्रवण कर ।। ३३८ ।।

दुष्टशब्देषु रमतेऽशुद्धशब्देष चाप्यति
पश्चात्ताप भवेदस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ।। ३३९ ।।

जो मनुष्य बुरे बुरे शब्दोंको कहे और जो अशुद्ध शब्दोंको कहे और पीछेसे पश्चात्ताप करे उसकी मृत्यु होगी इसमें संशय नहीं ।। ३३९ ।।

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः ।
महावैद्यो भवेत्तस्य तस्य मृत्युर्भवेद्ध्रुवम् ।। ३४० ।।

जिसका हुंकार शीतल हो और फूत्कार अग्निके समान हो उसकी चाहे महान् वैद्य रक्षा करे तो भी निश्चयसे मृत्यु होगी ।। ३४० ।।

जिह्वां विष्णुपदं ध्रुवं सुरपदं सन्मातृकामंडलमेतान्येव-मरुन्धतीममृतगुं शुक्रं ध्रुवं वा क्षणम् । एतेष्वेकपि स्फुटं न पुरुषः पश्येत्पुरः प्रेषितः सोऽवश्यं विशतीह कालवदनं संवत्सरादूर्ध्वतः ।। ३४१ ।।

जो मनुष्य जीभ (जिह्वा), आकाश, ध्रुव, देव, मार्ग, मातृकाओंका मण्डल, अरुंधती, चन्द्रमा शुक्र, अगस्ति इनमेंसे एकको भी स्पष्ट कहनेसे न देखे वह रोगी अवश्य वर्षके अनंतर कालके मुखमें जायगा ।। ३४१ ।।

अरश्मिबिम्बं सूर्यस्य वह्नेः शीतांशुमालिनः ।
दृष्ट्वैकादशमासायुर्नरश्चोर्ध्वं न जीवति ।। ३४२ ।।

जिस मनुष्यको सूर्य चन्द्रमाके प्रतिबिंब और अग्नि इनके किरण प्रतीत न हों उस मनुष्यकी अवस्था ग्यारह मासकी जाननी ।। ३४२ ।।

वाप्यां पुरोषमूत्राणि सुवर्णं रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दश मासान्न जीवति ।। ३४३ ।।

जिस मनुष्यको स्वप्नमें अथवा जाग्रत अवस्थामें बावडीमें मल, मूत्र, सुवर्ण चांदी दीखे वह दश माससे परे नहीं जीवेगा ।। ३४३ ।।

क्वचित्पश्यति यो दीपं सुवर्णं च कषान्वितम् ।
विरूपाणि च भूतानि नव मासान्न जीवति ।। ३४४ ।।

जो मनुष्य कभी कभी दीपकको अथवा कसोटीको लगाया हुआ सुवर्ण और संपूर्ण भूतोंको विपरीत देखे वह नौ महीनेसे परे नहीं जीवेगा ।। ३४४ ।।

सस्थूलाङ्गोऽपि कृशः कृशोऽपि सहसा स्थूलत्वमालभ्यते,
प्राप्तो वा कनकप्रभां यदि भवेत्क्रूरोऽपिकृष्णच्छविः ।
शरो भीरुसुधीरधर्मनिपुणः शान्तो विकारी पुमानित्येवं
प्रकृतौ प्रयाति चलनं मासाष्टकं जीवति ।। ३४५ ।।

जिस मनुष्यकी प्रकृति (स्वभाव) इस प्रकार चलायमान हो जाय कि स्थूल हो तो एकदम कृश हो जाय और कृश हो तो एकदम स्थूल हो जाय और क्रूर वा कृष्णवर्ण होकर सुवर्ण समान कांतिवाला हो जाय, शूरवीर होकर भीरु हो जाय, धार्मिक होकर अधर्मी हो जाय और शांत होकर चञ्चल हो जाय तो वह मनुष्य आठ महीने जीवेगा ।। ३४५ ।।

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वामूले तथा स्याद्रु-
धिरं च कृष्णम् । विद्धं न च ग्लायति यत्र
दृष्टया जीवेन्मनुष्यः स हि सप्तमासम् ।। ३४६ ।।

जिस मनुष्यके हाथके तलवेपर पीडा हो, जिह्वाके मूलमें रुधिर काला हो जाय और जिसके गात्रमें टोचनेसे दुःख न हो वह मनुष्य सात मास जीवेगा ।। ३४६ ।।

मध्यांगुलीनां त्रितयं न वक्रं रोगं विना शुष्यति
यस्य कण्ठ । मुहुर्मुहुः प्रश्नवशेन जाड्यात्षड्भिः स मासैः
प्रलयं प्रयाति ।। ३४७ ।।

जिस मनुष्य की बीचकी तीन अंगुली न मुड़ें और रोगके विना ही कंठ सूख जाय जिसको बारंबार पूछनेसे जड़ता हो अर्थात् पूर्वापरका अनुसंधान न रहे वह मनुष्य छः महीनेमें मरणको प्राप्त हो जायगा ।। ३४७ ।।

न यस्य स्मरणंकिञ्चिद्विद्यते स्तनचर्मणि । सोऽवश्यंपञ्चमे
मासि स्कन्धारूढो भविष्यति ।। ३४८ ।।

जिस मनुष्यके स्तनोंके चाममें शून्यता हो जाय वह मनुष्य पांचवें महीने में चार मनुष्योंके कांधेपर अवश्य चढेगा (मरेगा) ।। ३४८ ।।

यस्य न स्फुरति ज्योति पीड्यते नयनद्वयम् ।।
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ।। ३४९ ।।

जिस मनुष्यके नेत्रोंकी ज्योति (प्रकाश) न हो और दोनों नेत्रोंमें पीड़ा हो उस मनुष्यका मरण चौथे मासमें अवश्य कहा है ।। ३४९ ।।

दन्ताश्च वृषणौ यस्य न किञ्चिदपि पीड्यते ।
तृतीयं मासगावश्यं कालाज्ञायां भवेन्नरः ।। ३५० ।।

जिस मनुष्यके दांत और अण्डकोशमें दबानेसे पीड़ा कुछ भी न हो वह तीसरे महीनेमें कालकी आज्ञामें पहुंचेगा ।। ३५० ।।

कालो दूरस्थितो वापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वदामि समासेन यथाऽऽदिष्टंशिवागमे ।। ३५१ ।।

दूर पर स्थित भी काल जिस उपायसे देखा जाय उस उपाय को शिवशास्त्रके अनुसार संक्षेपसे कहता हूं ॥ ३५१ ॥

एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वाऽऽदित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षयेन्निजच्छायां कण्ठदेशे समाहितः ।। ३५२ ।।

एकांत विजन वनमें जाकर और सूर्यको पीठपर करके अपनी छायाको सावधानीसे कंठदेशमें देखे ।। ३५२ ।।

ततश्चाकाशमीक्षेत ह्रीं परब्रह्मणे नमः
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः पश्यति शंकरम् ।। ३५३ ।।

फिर आकाशको देख और "ह्रीं परब्रह्मणे नमः" इस मंत्रको १०८ बार जप करे तो वह मनुष्य शिवजीको देखेगा ।। ३५३ ।।

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् । षण्मासाभ्यासयोगेन भूचरणांपतिर्भवेत् ।। वर्षद्वयेन तेनाथ कर्त्ता हर्त्तास्वयंप्रभुः ।।३५४ ।।

जिन शिवजीका रूप शुद्धस्फटिक तुल्य है और जो नानारूप को धारते हैं इस प्रकार छः महीने अभ्यास करनेसे भूचरों (प्राणियों) का राजा होता है और दो वर्ष अभ्यास करनेसे कर्त्ता, हर्त्ता स्वयंप्रभु हो जाता है ।। ३५४ ।।

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानन्दमेव च ।
सतताभ्यासयोगेन नास्ति किंचित्सुदुर्लभम् ।। ३५५ ।।

और निरन्तर अभ्यास करनेसे भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंका ज्ञान और परम आनन्दको प्राप्त होता है और उसको कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती ।। ३५५ ।।

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले ।
षणमासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्रसंशयः ।। ३५६ ।।

जिस योगीको निर्मल आकाशमें वह शिवजीका रूप कृष्णवर्ण दीखे वह योगी छः महीनेमें मृत्युको प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं ।। ३५६ ।।

पीते व्याधिर्भयं रक्ते नीले हानिं विनिर्दिशेत् ।
नानावर्णेऽथ चेत्तस्मिन्सिद्धश्चगीयते महान् ।। ३५७ ।।

पीला दीखे तो व्याधि. लाल दीखे तो भय, नीला दीखे तो हानि होती है, यदि उसमें नाना वर्ण दीखे तो योगी सिद्धियोंको प्राप्त होता है ।। ३५७ ।।

पदे गुल्फे च जठरे विनाशः क्रमशो भवेत् ।
विनश्यतो यदा बाहू स्वयं तु म्रियते ध्रुवम् ।। ३५८ ।।

यदि छायामें पैर गुल्फ (टकने) पेट ये न दीखें अथवा भुजा न दीखे तो निश्चयसे योगी मृत्युको प्राप्त होगा ।। ३५८ ।।

वामबाहुस्तथा भार्या नश्येत्तेति न संशयः ।
दक्षिणे बन्धुनाशो हि मृत्युं मासंविनिर्दिशेत् ।। ३५९ ।।

यदि वामभुजा न दीखे तो भार्या नष्ट होगी इसमें संशय नहीं दक्षिण भुजा न दीखे तो बन्धुओंका नाश होगा और एक मासमें अपनी मृत्यु होगी ।। ३५९ ।।

अशिरोमासमरणं विनाजंघे दिनाष्टकम् । अष्टाभिः
स्कन्धनाशेन च्छायालोपेन तत्क्षणात् ।। ३६० ।।

शिर न दीखे तो मासभर, जंघा न दीखे तो आठ दिनमें, कन्धे न दीखे तो आठ दिनमें, सर्वथा छाया न दीखे तो उसी क्षणमें मृत्यु जाननी ।। ३६० ।।

प्रातः पृष्ठगते रवौ च निमिषाच्छायाऽङ्गुलिश्चाधरं दृष्ट्वाऽर्द्धेन मृतिस्त्वनन्तरमहो छायां नरः पश्यति । तत्कर्णांसकरास्य पार्श्वहृदया भावेक्षणार्धात्स्वयं दिङ्मूढो हि नरः शिरोविगमतो मासांस्तु षड् जीवति ।। ३६१ ।।

जो प्रातःकालके समय सूर्यको पीठकी तरफ करके छायापुरुष की अंगुली और ओठ न दीखे तो निमिषिमात्रमें और फिर छायाको और अपन को न देखे तो आधे निमिषमें मृत्यु होगी और छायाके कान, कन्धे, हाथ, मुख पार्श्व, हृदय न दीखें तो आधे क्षणमें मृत्यु हो और छायापुरुषका शिर न दीखे और स्वयं दिशाओंका ज्ञान न रहे तो मनुष्य छः महीने जीवेगा ।। ३६१ ।।

एकादिषोडशाहानि यदि भानुर्निरन्तरम् ।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिके ।। ३६२ ।।

जिस मनुष्यका एक एक दिनसे सोलह दिन पर्यंत नियमसे सूर्यस्वर ही चला रहे उस मनुष्यकी मृत्यु पन्द्रह दिनके भीतर हो जायगी ।। ३६२ ।।

संपूर्णं बहते सूर्यचन्द्रमा नैव दृश्यते । पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ।। ३६३ ।।

जिस मनुष्यका निरन्तर सूर्यस्वर ही बहता रहे और चन्द्रस्वर कभी न दीखे तो उस मनुष्यकी मृत्यु पन्द्रह दिनके भीतर हो जायगी ।। ३६३ ।।

मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं प्रवर्त्तते । तदाऽसौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ।। ३६४ ।।

जिस मनुष्यके मूत्र मल वायु एक वार निकसे उसको चला-चली कर जाने वह दश दिनमें अवश्य मर जायेगा ।। ३६४ ।।

सम्पूर्ण वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ।
मासेन जायते मृत्युः कालज्ञेनानुभाषितम् ।। ३६५ ।।

जिस मनुष्यका बराबर चन्द्रस्वर बहता है और सूर्यस्वर एक बार भी न दीखे वह मनुष्य एक मासमें मर जायगा यह कालके ज्ञानियोंने कहा है ।। ३६५ ।।

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमंण्डलम् ।। ३६६ ।।

अरुन्धती, ध्रुव, विष्णुके तीन पद, चौथा मातृमण्डल इनको जो न देखें उन्हें आयुसे हीन समझना चाहिये ।। ३३६ ।।

अरुन्धतीं भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
ध्रुवौ विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं मातृमण्डलम् ।। ३६७ ।।

जिह्वाको अरुन्धती, नासिकाके अग्र भागको ध्रुव, भ्रुकुटियोंको विष्णु पद और तारकाओंको मातृमण्डल, कहते हैं ।। ३६७ ।।

नव भ्रुवं सप्त घोषं पञ्च तारां त्रिनासिकाम् ।
जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम् ।। ३६८ ।।

जो भ्रुकुटी न देखे तो ९ दिनमें, कानोंका शब्द न सुने तो सात दिनमें, तारा न दीखे तो तीन दिनमें, जिह्वा, न दीखे तो एक दिनमें मनुष्यका निश्चयसे मरण कहा है ।। ३६८ ।।

कोणावक्ष्णोरंगुलिभ्यांकिञ्चित्पीड्य निरीक्षयेत् ।
यदा न दृश्यते बिन्दुर्दशाहेन भवेन्मृतः ।। ३६९ ।।

नेत्रोंके कोनोंको अंगुलियोंसे कुछ दबाकर देखे यदि दबानेसे तेजकी बिंदु न दीखे तो जान लो कि दश दिनमें मर जायगा ।। ३६९ ।।

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च ।
जपैर्ध्यानेन योगेन जायते कालवञ्चना ।। ३७० ।।

तीर्थोंके स्नान, दान, तप, सुकृत, जप, ध्यान, योग इनसे कालकी वंचना हो जाती है अर्थात् आया हुआ भी काल टल जाता है ।। ३७० ।।

शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलास्तथा '
समस्तु वायुर्विज्ञेयो बलतेजोविवर्धनः ।। ३७१ ।।

धातु और मल आदि ये दोष शरीरको नष्ट करदेते हैं और वायुकी समानता बल और तेज बढ़ानेवाली होती है ।। ३७१ ।।

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम् । योगाभ्यासात्समायान्ति साधु याप्यास्तु साध्यताम् ।। असाध्याजीवितंघ्नन्तिन-तत्रास्तिप्रतिक्रिया ।। ३७२ ।।

इससे उस देहकी रक्षा करनी जो धर्म आदिका साधन है, योगाभ्यास ही जयरूप हो जाता है और योगसे असाध्य साध्य हो जाता है, जो योगाभ्यास न हो तो कष्टसाधक मर जाते हैं, उसका कोई प्रतीकार (इलाज) अन्य नहीं ।। ३७२

येषां हृदि स्फुरति शाश्वतमद्वितीयं । तेजस्तमोनिवहनाशकरं रहस्यम् । तेषामखण्डशशिरम्यसुकांतिभाजां स्वप्नोऽपि नो भवति कालभयं नराणाम् ।। ३७३ ।।

जिन मनुष्योंके हृदयमें अनादि, अद्वितीय, अन्धकारके समूह का नाश करनेवाला और गोपनीय तेज (शिवस्वरोदयका ज्ञान) फुरता है, अखंड चन्द्रमाके समान रमणीय है कांति जिसकी ऐसे उन मनुष्योंको स्वप्नमें भी कालका भय नहीं होता ।। ३७३ ।।

इडा गंगेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी । मध्ये सरस्वतीं विद्यात्प्रयागादिसमस्तथा ।। ३७४ ।।

इड़ा नाड़ी गंगा और पिंगला नाडी यमुना नदी जाननी और मध्यकी (सुषुम्ना) सरस्वती इन तीन नाडियोंके संगमको प्रयागके समान समझना ।। ३७४ ।।

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
बद्धपद्मासनो रोगी बन्धयेदुड्डियानकम् ।। ३७५ ।।

प्रथम साधनको ही शीघ्र प्रतीतिका कारण कहा है इससे योगी पद्मासनको बांधकर उडियानक नाम आसनको बांधे अर्थात् अपानकी गतिको ऊपर करके नाभिरंध्रके समीप लावे ।। ३७५ ।।

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः ।
ज्ञातव्यो योगिभिर्नित्यं देहसंशुद्धिहेतवे ।। ३७६ ।।

योगी जन अपने देहकी भले प्रकारसे शुद्धिके लिये पूरक. कुंभक, रेचक इन तीनों प्राणायामोंको जाने ।। ३७६ ।।

पूरकः कुरुते वृद्धिं धातुसाम्यं तथैव च ।
कुम्भके स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम् ।। ३७७ ।

उन तीनोंमें पूरक प्राणायाम (बाहरकी वायुको भी खींचना) वृष्टिमें देहको सींचता है और संपूर्ण धातुओंको समान करता है और कुंभक प्राणायाम (बाहरभीतरकी वायुको स्थिर रखना) देहकी धातुओंको स्तंभन (जहांकी तहां रखना) करता है और जीवकी रक्षाको बढ़ाता है ।। ३७७ ।।

रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं व्रजेत् ।
पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबन्धं च कारयेत् ।। ३७८ ।।

रेचक प्राणायाम (भीतरकी वायु बाहर निकालना) पापको हरता है इस प्रकार जो प्राणायाम करता है वह योगपदको प्राप्त होता है फिर जो योगी समान रूपसे टिकता है, वह लयबंधको कर सकता है अर्थात् मृत्युको रोक सकता है ।। ३७८ ।।

कुम्भयेत्सहजं वायुं यथाशक्ति प्रकल्पयेत् ।
रेचयेच्चन्द्रमार्गेण सूर्येणापूरयेत्सुधीः ।। ३७९ ।।

स्वाभाविक वायुको अपनी शक्तिके अनुसार कुंभक प्राणायाम से रोके चन्द्रस्वरसे रेचक करे और सूर्यस्वरसे पूरक प्राणायामको बुद्धिमान् मनुष्य करे ।। ३७९ ।।

चन्द्र पिबति सूर्यश्च सूर्य पिबति चन्द्रमाः ।
अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ।। ३८० ।।

जिसके चन्द्रस्वरको सूर्यस्वर और सूर्यस्वरको चन्द्रस्वर परस्पर समय समय पीवें वह चन्द्रमा और तारोंकी स्थिति पर्यंत जीवेगा ।। ३८० ।।

स्वीयाङ्गे वहते नाडी तन्नाडीरोधनं कुरु
मुखबन्धममुञ्चन्वै पवनं जायते युवा ।। ३८१ ।।

जो योगी अपने अंगमें जो नाड़ी बहती हो उसको रोककर और अपने मुखको बांधकर मुखसे पवनको न निकलने दे, वह योगी वृद्ध अवस्थासे युवा अवस्था को प्राप्त होता है ।। ३८१ ।।

मुखनासाक्षिकर्णान्तानंगुलीभिर्निरोधयेत् ।
तत्त्वोदयमितिज्ञेयं षण्मुखीकरणंप्रियम् ।। ३८२ ।।

मुख, नासिका, नेत्र, कान इनको अपनी अंगुलियोंसे रोके, इसीको तत्त्वोदय षण्मुखीकरण और प्रिय जानना ।। ३८२ ।।

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणं त्विदम् ।
स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित् ।। ३८३ ।।

उसका रूप यह है कि वह योगी तत्त्वोंका रूप गति स्वाद मंडल लक्षण इन सबको जगत्में जानता है और तत्त्वोंके हेलमेलमें पृथक् २ मार्गको जान सकता है ।। ३८३ ।।

निराशो निष्कलो योगी न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
वासनामुन्मनां कृत्वा कालं जयति लीलया ।। ३८४ ।।

आशारहित और शुद्धरूप योगी किसी वस्तुकी चिंता न करे और वासनाओंके त्यागसे लीला (अनायास) से कालको जीतता है ।। ३८४ ।।

विश्वस्य वेदिका शक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते ।
तत्रस्थं तु मनो यस्य याममात्रं भवेदिह ।। ३८५ ।।

सब विश्वके जाननेकी शक्ति नेत्रोंसे दीखती है, उस शक्तिके विषे जिस योगीका मन एक प्रहर मात्र टिके ।। ३८५ ।।

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रयमानतः ।
शिवेनोक्तं पुरा तन्त्रे सिद्धस्य गुणगह्वरे ।। ३८६ ।।

उस योगीकी अवस्था प्रतिदिन तीन तीन घटिकाके प्रमाणसे बढ़ती है, यह बात गुणवान् सिद्धोके तंत्रशास्त्रमें शिवजी ने कही है ।। ३८६ ।।

बद्ध्वा पद्मासनं ये गुदगतपवनं सन्निरुद्धयामुमुच्चैस्तं
तस्यापानरन्ध्रक्रमजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुद्धय एकीभूतं
सुषुम्ना विवरमुपगतं ब्रह्मरन्ध्रे च नीत्वा निक्षिप्याकाशमार्ग
शिव चरणरता यान्ति ते केऽपि धन्याः ।। ३८७ ।।

योगी पद्मासनको बांधकर गुदामें स्थित पवन (अपान) को रोककर उसको उंचेको लेजायँ और अपने रंध्रमें जीते स्थिर हुए उसको प्राणशक्तिके संग रोककर दोनोंकी एकता करे, जब वे दोनों एक हो जायँ और सुषुम्ना नाड़ी के रंध्रमें पहुँचे जावे फिर ब्रह्मरंध्रमें ले जाकर आकाशमार्गमें छोड़ दें, इस प्रकार शिवजीके चरणोंमें रत जो कोई योगी जाते (मरते) हैं वे धन्य हैं ।। ३८७ ।।

एतज्जानाति योगी य एतत्पठति नित्यशः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ।। ३८८ ।।

जो योगी इसको जानता है और नित्य पढ़ता है संपूर्ण दुःखोंसे रहित वह योगी वांछित फलको प्राप्त होता है ।। ३८८ ।।

स्वरज्ञानं नरे यत्र लक्ष्मीः पदतले भवेत् ।
सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत् ।। ३८९ ।।

जिस मनुष्यको स्वरका ज्ञान है उसके चरणोंके नीचे लक्ष्मी है और उसके शरीरमें और जहां वह जाय वहां उसको सुख होता है ।। ३८९ ।।

प्रणवः सर्ववेदानां ब्राह्मणे भास्करो यथा ।
मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ।। ३९० ।।

संपूर्ण वेदोंमें जैसे ओंकार और ब्राह्मणोंमें जैसा सूर्य पूज्य है इस प्रकार मृत्युलोकमे स्वरज्ञानी पुरुष भी पूज्य है ।। ३९० ।।

नाडीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च ।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षेकोटिरसायनम् ।। ३९१ ।।

जो मनुष्य पूर्वोक्त तीनों नाड़ियोंको जानता है और जिसको तत्त्वका ज्ञान है उसके तुल्य लक्षकोटि रसायन नहीं हैं ।। ३९१ ।।

एकाक्षरप्रदातारं नाडीभेदविवेचकम्। पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणी भवेत् ।। ३९२ ।।

नाड़ीभेदका विवेचन करनेवाला जो एक अक्षर भी दे दे पृथिवीमें वह द्रव्य नहीं है जिसको देकर अनृणी हो जाय अर्थात् उसका बदला दे सके ।। ३९२ ।।

स्वरतत्त्वं तथा युद्धं देवि वश्यं स्त्रियस्तथा ।
गर्भाधानं च रोगश्च कलार्द्धेनैवमुच्यते ।। ३९३ ।।

स्वरका तत्त्व युद्ध और स्त्रियोंका वशीकरण गर्भाधान और रोग से सब आधी कला (घटी) से इस प्रकार कहे जाते हैं ३९३ ।।

एवं प्रवोततं लोके प्रसिद्धं सिद्धयोगिभिः ।

चन्द्रार्कग्रहणे जाप्यं पठतां सिद्धिदायकम् ।। ३९४ ।।

इस प्रकार यह स्वरोदय लोकमें प्रवृत्त हुआ और योगिजनोंने प्रसिद्ध किया, इसको चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें जो जपता है वा पढ़ता है उसको संपूर्ण सिद्धियां देता है ।। ३९४ ।।

स्वस्थाने तु समासीनो निद्रां चाहारमल्पकम् ।

चिंतयेत्परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ।। ३९५ ।

जो अपने स्थानपर बैठा रहे निद्रा व भोजन अल्प करे और परमात्माकी चिंता करे और जाने वह मनुष्य स्वरका ज्ञानी हो जायगा ।। ३९५ ।।

इति श्रीउमामहेश्वरसंवादे भाषाटीकासमेतं

शिवस्वरोदयज्ञानं संपूर्णम्

मीमांसा–योग–सांख्य विषयक अन्य प्रकाशन

घेरण्ड संहिता : हिन्दी टीका सहित

पातंजल योगदर्शन मूलसूत्र, दोहा तथा हिन्दी टीका सहित

बिन्दु योग : (राजयोग का प्रारम्भिक ग्रन्थ) हिन्दी टीका सहित

योग संध्या: अष्टांग योग में कुशल श्री सदाशिव नारायण ब्रह्मचारी निर्मित हिन्दी टीका सहित, योगाभ्यासियों के लिये परमोपयोगी

बृहद्योगसोपान (पं० रामनरेश मिश्र विरचित) इसमें यम, नियम, प्राणायाम, आदि सचित्र अष्टांग योग का विस्तारपूर्वक वर्णन है। योग के आर्षग्रन्थों से संगृहीत मूल पाठ और हिन्दी टीका सहित

शिव संहिता : काशी निवासी गोस्वामी श्री रामचरणपुरी कृत हिन्दी टीका सहित

सर्व शिरोमणि सिद्धान्तसार: (हिन्दी में) अलवर निवासी योगमार्ग निपुण श्री स्वामी आनन्द मंगलजीका अनुभव वाह्य प्रकाशोंमें

सहज प्रकाश : श्री स्वामी चरणदासजीकी बहिन सहजोबाई कृत

सांख्य दर्शन : (कपिलदेवजीकृत) श्री प्रभुदयालजीकृत हिन्दी-टीका सहित

हठयोग प्रदीपिका : (सान्ताराम योगीन्द्र विरचिता) श्रीयुत ब्रह्मानन्द विरचित संस्कृत टीका तथा पं० मिहिर चन्द्रकृत हिन्दी टीकासहित

ज्ञानस्वरोदय: श्रीस्वामी चरणदासजीकृत

पुस्तकें मिलने के स्थान

१) खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४.

२) खेमराज श्रीकृष्णदास,
६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट
पुणे - ४११ ०१३.

३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि. ठाणे - महाराष्ट्र)

४) खेमराज श्रीकृष्णदास,
चौक - वाराणसी (उ.प्र.)